मूल्य : रु. ६/-
अंक : १८३
मार्च २००८

होलिकोत्सव : २१ मार्च २००८

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी
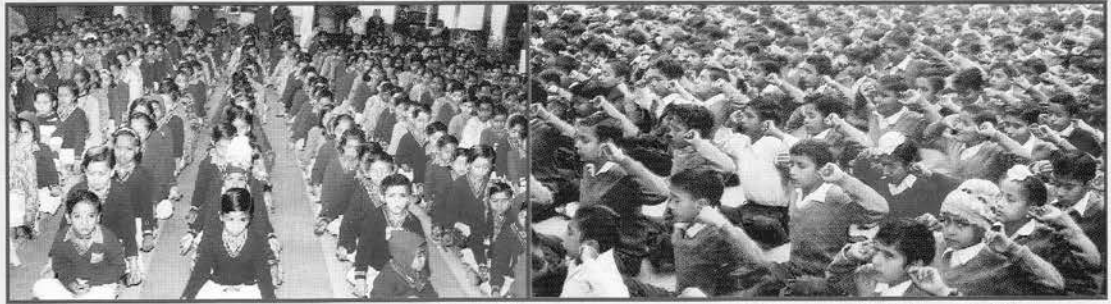
बल्लभगढ़, जि. फरीदाबाद (हरि.) में भगवद्ध्यान तथा होशियारपुर (पंजाब) में भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास करते नौनिहाल।

काटोल, जि. नागपुर (महा.) में लगी 'बाल संस्कार प्रदर्शनी' की झाँकी तथा सारस्वत्य मंत्र से आहुतियाँ देते प्रागपुर, जि. काँगड़ा (हि.प्र.) के विद्यार्थी।

रायचुर (कर्नाटक) के विद्यार्थियों में सत्साहित्य-वितरण तथा गणेश जयंती के निमित्त मुंबई में १०८ कुंडीय महायज्ञ संपन्न हुआ।

स्मृतिवर्धक प्राणायाम का अभ्यास करते हुए सीतापुर (उ.प्र.) तथा योगासन का अभ्यास करते हुए वाशिम (महा.) के विद्यार्थी।

ऋषि प्रसाद
मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १८३
मार्च २००८ मूल्य : रु. ६-००
फाल्गुन-चैत्र वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३२५
नेपाल, भूटान व पाक में	९०	१३५	३२५
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 40	US $ 80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९. गुजरात
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

VP

अनुक्रम

भारत और हिन्दू धर्म एकरूप हैं

भारत में ईसाई मिशनरियों के स्कूलों और अस्पतालों की मानवसेवा की प्रवृत्तियों का हेतु धर्मान्तरण ही है। यह बात महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानंद और भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जैसे राष्ट्रभक्तों ने कही है। श्री जी.ए. स्मोल, डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स ने सन् १९३२-३७ की असम सरकार की क्विन्क्वेनियल रिपोर्ट में लिखा है - '...इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि (ईसाई) मिशन ने बच्चों को ईसाई बनाने के एकमात्र उद्देश्य से शिक्षा के क्षेत्र में रस लिया है।...'

उस वक्त भारत स्वतंत्र राष्ट्र नहीं था। अब भारत स्वतंत्र है और संविधान ने भारत के नागरिकों को धार्मिक स्वातंत्र्य का मौलिक अधिकार दिया है। अमेरिका की मायामी यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर टॉम रोमेनो ने कहा है : ''...किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र के पब्लिक स्कूल के शिक्षक और संचालक को विद्यार्थियों पर धोखे से किसी धर्म को थोपने का अधिकार नहीं है।''

लेकिन आज भारत के स्कूलों में क्या हो रहा है -

✲ बिजोय साधना निवासी स्कूल, जो ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित है, में प्रवेश पानेवाली दो नाबालिग लड़कियों, टिटिया गाँव की अंजना बेहेरा और नछीपुर की सरोजिनी मुरमु को ईसा की प्रार्थना करने और सुबह ५-०० से मध्याह्न ११-३० बजे तक सतत बाइबिल का पाठ करने को मजबूर किया गया। अस्वस्थता के कारण वे ऐसा न कर सकीं, तब उनको शारीरिक और मानसिक त्रास दिया गया। स्थानिक सामाजिक कार्यकर श्री रंजन मिश्र ने कहा : ''ईसाई स्कूलों के अंदर ऐसी कई घातक प्रवृत्तियाँ हो रही हैं। उनका यौन-शोषण किया जा रहा है।''

(ऑर्गेनाइजर, २६अगस्त, २००६)

✲ श्रीनगर : शिक्षाप्रसार के नाम पर मिशनरी स्कूल में धर्मान्तरण की प्रवृत्ति हो रही है। यह आरोप होते ही पुलवामा के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट श्री मेहरज अहमद काकरू ने ५ दिन के लिए स्कूल बंद करने और जाँच का आदेश दिया।

(टाईम्स ऑफ इन्डिया, ११ सितम्बर, २००६)

✲ एक प्राइवेट इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़नेवाले बच्चों के अभिभावकों ने स्कूल के अधिकारियों के विरुद्ध फरियाद दर्ज की है कि बच्चों को वे ईसाई धर्म की शिक्षा देते हैं। एक बच्चे के पिता नंदीश ने कहा कि बच्चों को यह सिखाया गया कि ''ईसा सबसे बड़े वीर हैं।'' अन्य एक बच्चे के पिता ने कहा : ''बच्चों को कहा गया कि उनको चर्च में जाना ही चाहिए। जो चर्च में नहीं जायेंगे वे नरक में जायेंगे।'' स्कूल के चेयरमैन श्री पिन्टो के विरुद्ध महादेवपुरा पुलिस स्टेशन में फरियाद दर्ज की गयी।

(डेक्कन हेराल्ड, १६ सितम्बर, २००६)

✲ रामनाथपुरम् (तमिलनाडु) के सी.के. मंगलम् स्कूल के विद्यार्थी सरवनचंद्रन् को दो शिक्षकों (आर्मस्ट्राँग और नित्यानंद) ने रुद्राक्ष की माला निकाल देने को कहा। जब उसने इन्कार किया तब उससे माला छीन ली और क्रूरता से उसे मारा-पीटा।

(विजय टाईम्स, बैंगलोर एड्शिन, १९ फरवरी, २००७)

जैसे शिक्षक होंगे वैसे ही संस्कार बच्चों को मिलेंगे। अतः स्कूलों के शिक्षकों और अधिकारियों की नियुक्ति उनके चरित्र व योग्यता के आधार

पर ही होनी चाहिए । फिर भी ईसाई मिशनरियों के स्कूल-कॉलेजों में उनकी नियुक्ति धर्म के आधार पर की जाती है । ईसाई पादरियों और धर्मोपदेशकों का पाशविक चरित्र उनके व्यवहार से प्रकट हो जाता है -

* सान डियेगो चर्च के अधिकारियों ने पादरियों के द्वारा किये गये बलात्कार, यौन-शोषण आदि के १४० से अधिक अपराधों के मामलों को निपटाने के लिए ९.५ करोड डॉलर चुकाने का ऑफर किया ।

(कोन्ट्रा कोस्टा टाईम्स, ३० मार्च, २००७)

* पलासा में कुछ दिन पहले ही एक लेक्चरर ने एक विद्यार्थिनी पर एसिड फेंका था । अब बरुआ जिले के एक गवर्नमेन्ट डिग्री कॉलेज के प्रिंसिपल विल्सन राज ने शराब के नशे में एक छात्रा के साथ बलात्कार करने की कोशिश की । कॉलेज के छात्रों ने उसकी पिटायी की तब वह भाग गया ।

(न्यू इन्डियन एक्सप्रेस, ४ नवम्बर, २००७)

* विरार (मुंबई) में अनाथाश्रम चलानेवाले एक पादरी एलेक्जेन्डर ज्योर्ज ने १० वर्ष की एक विद्यार्थिनी पर बलात्कार किया । उसकी शिक्षिका कविता वान्सोरे ने नालासोपारा पुलिस स्टेशन में फरियाद दर्ज करायी।

(डी.एन.ए. इन्डिया, १५ अप्रैल २००६)

* पेड्डाह पुलिस ने एक ईसाई धर्मोपदेशक और उसके साथी की एक दलित कन्या पर बलात्कार के संदर्भ में गिरफ्तारी की ।

(द हिन्दू, ३० जून, २००६)

धर्मनिरपेक्षता के नाम पर सरकार स्कूलों में हिन्दू धर्म की शिक्षा देने पर रोक लगा सकती है तो ईसाई धर्म की शिक्षा देने पर रोक क्यों नहीं लगाती ? मिशनरियों के स्कूलों एवं कॉलेजों में शिक्षकों एवं अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के बदले धर्म के आधार पर क्यों की जाती है ?

सरकार की ऐसी छद्म धर्मनिरपेक्षता से जनता को सावधान होना चाहिए । अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ वैदिक स्टडीज के निदेशक डॉ. डेविड फ्रॉली लिखते हैं- स्वतंत्रता के बाद एक ओर हिन्दू विरोधी प्रचार तथा दूसरी ओर साम्यवाद, इसलाम तथा ईसाई धर्म के प्रचार द्वारा भारत को टुकड़े-टुकड़े करने की साजिश ने इस देश की समस्याओं को काफी बढ़ाया है । तथाकथित उदार धर्मनिरपेक्ष वे हैं जो भ्रष्ट राजनीतिज्ञ हैं और वे अपनी कुर्सी तथा सत्ता के लालच में अपने वोट बैंक को बढ़ाने के लिए भारतीय हिन्दू समाज को जातिवाद एवं धर्म के नाम पर बरगलाते हैं तथा आपस में द्वेष फैलाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं ।

(उत्तिष्ठ कौन्तेय, पृष्ठ क्र.१३)

इससे यह सिद्ध होता है कि धर्मान्तरण एक राष्ट्रद्रोह का अपराध है । उसे रोकना किसी एक धर्म के किसी महापुरुष का ही काम नहीं है, राष्ट्र की अखंडता को बनाये रखने के लिए प्रत्येक धार्मिक और धर्मनिरपेक्षतावादी देशप्रेमी का यह कर्तव्य है कि वह धर्मान्तरण को रोकने का हर संभव प्रयास करे ।

डॉ. एनी बेसेंट ने कहा है : ''भूलिये नहीं ! हिन्दू धर्म के बिना भारत का कोई भविष्य नहीं ! यदि आप हिन्दू धर्म को छोड़ देते हैं तो आप अपनी भारतमाता के हृदय में छुरा भोंकते हैं । यदि भारतमाता का जीवन-रक्तस्वरूप हिन्दू धर्म निकल जाता है तो माता गतप्राण होगी । यदि आप अपने भविष्य को मूल्यवान समझते हैं, अपनी मातृभूमि से प्रेम करते हैं तो अपने प्राचीन धर्म की पकड़ छोड़िये नहीं, उस निष्ठा से च्युत न होइये जिस पर भारत के प्राण निर्भर हैं । भारत के लिए सर्वाधिक संकट यही होगा कि वह अपने धर्म से वंचित हो जाय । यदि हिन्दू ही हिन्दू धर्म को न बचा सके तो और कौन बचायेगा ? यदि भारत की संतान अपने धर्म पर दृढ़ न रही तो कौन उस धर्म की रक्षा करेगा ? भारत ही भारत को बचा सकता है तथा भारत और हिन्दू धर्म एकरूप हैं ।'' **(डॉ. प्रेमजी मकवाणा)** □

कब तक सोते रहोगे ?

- पूज्य बापूजी

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

इसका अर्थ लौकिक न समझें । इसका अर्थ है : 'सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिन नाशवान सांसारिक सुखों की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं, परमात्मा के तत्त्व को जाननेवाले मुनि के लिए वह रात्रि के समान है ।' (भगवद्गीता : २.६९)

जिस अविद्यामय, अंधकारमय, परिवर्तनशील, ममतामय नश्वर संसार में सांसारिक लोग जगते हैं, योगी उसमें सोता रहता है । अर्थात् जैसे सोये हुए व्यक्ति का ममता और अहंता से प्रेरित व्यवहार नहीं होता, ऐसे ही परमात्मा में स्थित योगी का संसार के प्रति व्यवहार होता है । जिस परमात्मशांति की हमें कोई सुवास नहीं, जिस परमात्मतत्त्व की हमें कोई खबर नहीं, जिस परमात्मा में स्थिति करने से जन्म-जन्मांतर के पाप-ताप मिट जाते हैं ऐसे परमात्मा के ज्ञान से विमुख हमलोग सोये रहते हैं ।

जब तक इस मोहनिशा से, अविद्या से जगने का ज्ञान हमारे पास नहीं है, तब तक हमारे पास जो कुछ भी है, उसकी कीमत दो कौड़ी की है ।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा ।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥

(रामचरित. अयो.कां. : ९२.१)

तुम्हारे पास ऐसा ज्ञान आ जाय कि परिस्थितियाँ कैसी भी हों, प्रतिकूलता हो चाहे अनुकूलता हो, मित्र हो चाहे शत्रु हो, अपना हो चाहे पराया हो लेकिन यह संसार का व्यवहार तुम्हें मोहनिशा में दिखे, मायावी दिखे और इन सबको देखनेवाला परमात्मा सत्य दिखे । सत्संग सुनते-सुनते, शुभ कर्म करते-करते, विवेक करते-करते योग्यता बढ़ती है । पचासों विचार आते हैं । पचास में से जो विचार सबसे ज्यादा प्रभावशाली होता है वह याद रह जाता है और बाकी के सब भूल जाते हैं ।

दिन भर में प्रभावशाली ४ विचार आते हैं तो सप्ताह भर के २८ विचार याद नहीं रहते हैं । उनमें भी पूरे सप्ताह में जो मुख्य विचार रहा होगा वह याद रहता है । सप्ताह में एक विचार आपको याद रहता है तो महीने भर में ४ हुए और साल भर के हो गये ४८ । परंतु नहीं, साल भर के ४८ विचार याद नहीं रहते हैं । साल भर के कृत्यों में से जिस कृत्य ने आपको अधिक-से-अधिक प्रभावित किया वही याद रहता है । इसी प्रकार जीवन भर के कृत्यों में जो मुख्य होते हैं वे ही मौत के समय याद आते हैं । जीवन में ज्ञान और विवेक की प्रधानता होनी चाहिए । आपने आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया तो भी सत्संग से कम-से-कम मौत के समय ज्ञान और विवेक तो साथ रहेगा कि मृत्यु शरीर की होती है, मैं तो अजर-अमर चैतन्य आत्मा हूँ ।

जिसकी सत्ता से गीत उठते हैं, भजन उठते हैं उस परमात्मा में जो जगते हैं वे वास्तव में जगते हैं । उस परमात्मा को छोड़कर जो संसार में जगते हैं वे जगते हुए भी वास्तव में सोये हैं ।

एक माई अपने पुत्र को जगा रही थी : 'देवेन्द्र ! देवेन्द्र !! जाग, जाग... कब तक सोता रहेगा ?... सोते-सोते समय बीत गया... अब सुबह हो गयी... पक्षी गीत गा रहे हैं... हवाएँ भी गुनगुना रही हैं... देवेन्द्र ! अब तो जाग जा... बीता समय वापस नहीं आता...'

इधर देवेन्द्र नाम का कोई व्यक्ति घूमने निकला था। घर लौट ही रहा था, इतने में यह आवाज सुनायी पड़ी। स्तब्ध होकर खड़ा रह गया। कभी सुना होगा किसी ब्रह्मज्ञानी संत का सत्संग। वह व्यक्ति वापस मुड़ा और सीधा जंगल की ओर चल पड़ा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किसी ब्रह्मज्ञानी संत-योगी की शरण प्राप्त कर ली।

संत से कहा : ''महाराज ! देवेन्द्र को जगाने की कृपा करें। देवेन्द्र आपके द्वार पर आया है, उसे जगाओ।''

वे पहुँचे हुए संत थे। जब संत ने उसे अज्ञानरूपी रात्रि से जगाया तब वास्तव में वह देवों का राजा इन्द्र - 'देवेन्द्र' हो गया।

परिवारवालों को देवेन्द्र का पता चला। उन्होंने आकर कहा : ''इतने दिन से कहाँ चले गये थे ?''

बोले : ''हररोज घूमकर फिर उसी बिस्तर पर सोने को आता था। रात्रि की नींद से थकता तो सुबह की नींद चालू करता और उस नींद से थकता तो रात्रि की नींद चालू करता था। शरीर की थकान होती तब बिस्तर पर सो जाता था और मन की थकान होती तब विषयों में सो जाता था।

एक दिन घूमने गया था तब कोई माई बोल रही थी : देवेन्द्र जाग... जाग...। मुझे लगा कि यह माई मुझे वास्तव में जगने को बोल रही है। मैं वहीं से जंगल में गया। ढूँढ़ लिया पहुँचे हुए आत्मसाक्षात्कारी महापुरुष को, परमात्मप्रसाद में प्रतिष्ठित करानेवाले परम संत को। उन्होंने जप सिखा दिया। जप करने से मन शुद्ध एवं अंतर्मुख होता है। जप, प्राणायाम, ध्यान, स्वाध्याय, सत्पुरुषों का संग और जगत का विवेक - इन छः साधनों का आश्रय लेने से मनुष्य जल्दी अपने वास्तविक स्वरूप में जग जाता है। मैंने इन छः साधनों का उपयोग किया और मैं जग गया। अब सोते हुए भी जगा हूँ और पहले तो जगते हुए भी सो रहा था।''

संत तुलसीदासजी ने कहा है :

मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

'मैं और मेरा, तू और तेरा - यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है।'

(रामचरित. अर.कां. : १४.१)

'शरीर मैं हूँ और शरीर के संबंधी मेरे हैं'- यह जो माया है, इसके वश होकर सब सो रहे हैं। सांसारिक लोग मोहनिशा में इतने सोये हैं कि उन्हें परमार्थ की बात सुनने को मिलती नहीं और सुनते हैं तो टिकाने की क्षमता नहीं रही क्योंकि तन और मन संसार में इतने बिखर गये हैं, जीवन इतना कोलाहल से भर गया है कि सत्य बात सुनने-समझने की क्षमता ही खो बैठे हैं। इसीलिए लोग सद्गुरु का दर्शन-सत्संग करने जाते हैं, जिससे अन्दर के पाप-ताप मिटें, सत्यस्वरूप का ज्ञान सुनने-समझने की क्षमता प्राप्त हो और आत्मिक शांति मिले।

उस व्यक्ति की तरह आप भी पहुँच जाओ किन्हीं पहुँचे हुए संत के सान्निध्य में और जग जाओ अपनी वास्तविक महिमा में। बहुत हो गया, अब तो जागो बाबा ! अज्ञानरूप मोहनिद्रा में कब तक सोते रहोगे ? क्या पता फिर ऐसा सुंदर अवसर, हँसते-खेलते ब्रह्मानंद का आस्वादन करानेवाले संत-भगवंत-सद्गुरु सहज में मिलें-न मिलें।

अब की बिछड़ी कब मिलेगी जाय पड़ेगी दूर।

देखना, कहीं सहज में हाथ लगा सुनहरा अवसर चूकने न पाये। □

प्रसन्नता : एक ईश्वरीय वरदान

आत्मचैतन्य से उभरती आनंद की तरंगें जाने-अनजाने में सहज ही मुख पर छलकती हैं । व्यक्ति के अंतःकरण की इस स्थिति को 'प्रसन्नता' कहते हैं ।

प्रसन्नता दो प्रकार की होती है : अस्थायी और स्थायी । जो वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि के संयोग से उत्पन्न होती है वह 'अस्थायी प्रसन्नता' है क्योंकि वियोग होने से खिन्नता और अशांति दे जाती है । जो प्रसन्नता वस्तु, व्यक्ति आदि के संयोग पर निर्भर नहीं होती एवं मन की शांत, स्वच्छ अवस्था से उत्पन्न होती है वह 'स्थायी प्रसन्नता' है क्योंकि वह अपने शाश्वत स्वरूप से संबंध रखती है ।

प्रसन्नता अंतःकरण की द्रवित अवस्था है । जैसे द्रवित मोम में रंग डालने से मोम में वह रंग पक्का हो जाता है, ऐसे ही अंतःकरण की इस अवस्था में जो भी भाव आते हैं वे दृढ़ हो जाते हैं । वे भाव व्यक्ति के उत्थान या पतन का कारण हो सकते हैं । इसलिए निर्विषय होकर अपने मन की शुद्ध स्थिति से ही प्रसन्नता प्राप्त करें । किसी व्यक्ति-वस्तु में आसक्त होकर उसकी प्राप्ति से प्रसन्नता प्राप्त की तो उससे परिणाम में आसक्ति ही दृढ़ होगी । जीवन में स्थायी प्रसन्नता ही सुखदायी है ।

इतिहास पर निगाह डालें तो पता चलेगा कि महान व्यक्तियों के संघर्षपूर्ण जीवन की सफलता का रहस्य प्रसन्नतारूपी रसायन का अनवरत सेवन करते रहना ही है । जो व्यक्ति आनन्द की खान को जान लेता है उसे श्रेष्ठ वातावरण की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । वर्तमान समय में जो परिस्थिति उसके सम्मुख होती है उसीमें वह सुख का अनुभव करता है । मनोदशा के अनुरूप प्रकृति में भी परिवर्तन होने लग जाता है । प्रकृति प्रसन्नचित्त एवं उद्योगी कार्यकर्ता को हर प्रकार से सहायता करती है । 'अग्नि पुराण' में आता है कि एक मानसिक प्रसन्नता ही सभी शकुनों से बढ़कर है - **एकतः सर्वलिंगानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥ (२३०.१३)**

संसार एक दर्पण है, जिसमें व्यक्ति को अपना ही प्रतिबिम्ब दिखलायी देता है। प्रसन्न व्यक्ति को देखकर दूसरे व्यक्ति स्वयं ही खुश होने लगते हैं। प्रसन्नचित्त व्यक्ति के पास बैठकर दुःखी व्यक्ति भी प्रसन्नता के प्रवाह में थोड़ी देर के लिए अपने दुःख को भूल जाता है । प्रसन्नमुख रहना यह मोतियों का खजाना देने से भी बढ़कर है । अप्रसन्न व्यक्ति दूसरों को अपना दुखड़ा सुनाकर न चाहते हुए भी उनके कीमती समय व मधुर मुसकान का हरण कर लेता है ।

अप्रसन्न रहना कोई नहीं चाहता । जीवन-यात्रा में आनेवाली अनेक समस्याओं से जूझते हुए भी क्या प्रसन्न रहना संभव है ? और यदि है तो कैसे ? समस्या के समय जो लोग भाग्य को कोसते हैं, दुःख की बातों को दोहराते हैं वे उसे और गहरा बनाते हैं । जो लोग ऐसे समय सत्संग-ज्ञान का आश्रय लेते हैं, वृत्ति को अंतर्मुख करते हैं वे समस्याओं में भी प्रसन्न रहकर स्थायी प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं । इतना ही नहीं, उनकी ऊँची विचारधारा हर कठिनाई को उन्नति की सीढ़ी में परिवर्तित कर देती है । उनका यह जीवनमंत्र होता है :

जिन्दगी के बोझ को हँसकर उठाना चाहिए ।
राह की दुशवारियों[1] पर मुसकराना चाहिए ॥

१. कठिनाइयाँ, विपत्तियाँ

स्थायी प्रसन्नता अंतःकरण की जितनी स्वाभाविक स्थिति है उतनी ही दुर्लभ भी है। इसलिए उसे उभारने के लिए शुरू में अभ्यास की जरूरत है । जीवन को प्रसन्नता से महकाने के लिए नित्य प्रसन्न रहने का संकल्प करें। आपका यह संकल्प आपको प्रसन्नचित्त बनाने में प्रभावकारी सिद्ध होगा । इतना ही नहीं, जब सब आपको प्रसन्नमुख देखेंगे तो उनके मन में यह संकल्प उठेगा कि 'वाह... ! कितना प्रसन्नचित्त व्यक्ति है !' उनका यह सहज संकल्प भी आपको स्थायी प्रसन्नता की प्राप्ति में मदद करेगा। प्रसन्नता तो चंदन है, दूसरे के माथे पर लगाइये तो आपकी उँगलियाँ अपने-आप महक उठेंगी ।

जो सर्वांगपूर्ण जीवन का आनंद लेना चाहते हैं उन्हें कल की चिंता छोड़कर अपने चारों ओर प्रसन्नता के बीज बोने चाहिए । 'ऋग्वेद' हमें संदेश देता है :

विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ।

'हम सदा ही अपनेको प्रसन्न रखें ।' (६.७५.८)

मन में यह बात पक्की कर लेनी चाहिए कि मेरा आनेवाला कल अत्यन्त प्रकाशमय, आनंदमय एवं मधुर होगा । जो सकारात्मक चिंतन करता है और प्रसन्न रहता है वह दिनोंदिन अपने-आपको अधिकाधिक भाग्यवान महसूस करता है । उसका मन सर्जनात्मक शक्ति से भर जाता है ।

यदि आप निश्चिन्त और प्रसन्न रहना चाहते हैं तो जो काम करना जरूरी है उसे कर डालिये तथा जो जरूरी नहीं है उसे भूल जाइये । सब वस्तु, व्यक्ति एवं परिस्थितियों को प्रभु का मानिये और सबके स्वामी प्रभु को अपना मानिये । आपके अंतःकरण में प्रसन्नता व शांति ईश्वरीय वरदान के रूप में विद्यमान हैं । अंतःकरण की आवाज सुनकर निःशंक जीवन व्यतीत कीजिये । प्रत्येक विचार, भाव, शब्द और कार्य को ईश्वरीय शक्ति से परिपूर्ण रखिये । ॐकार का गुंजन कीजिये ।

ॐ आनंद... ॐ शांति... ॐ प्रसन्नता... ❐

वास्तविक विजय

- पूज्य बापूजी

आजकल तो दूसरों का कुछ ख्याल नहीं रखा जाता, जैसे भी हो बस विजय मिले, सफलता मिले । वास्तविक विजय शत्रु को, लोगों को दबा देने से नहीं मिलती । यदि हमने उन्हें दबा दिया तो उनका दबा हुआ द्वेष कब हमको पराजय की खाई में गिरा दे कोई पता नहीं । किसीका शोषण कर आप विजयी बन गये यह धर्म-परायण विजय नहीं है क्योंकि इससे धर्म का लाभ- संतोष, तृप्ति नहीं मिली, धर्म का फल परमात्मशांति नहीं मिली; भोग मिला । फिर वह भोग छीना जायेगा तब बहुत परेशानी होगी ।

शोषक वृत्ति से बुद्धि मारी जायेगी । धर्म का आश्रय लिये बिना पद, प्रतिष्ठा की तरफ चले तो संघर्ष, अन्याय, दुःख बढ़ेगा । वास्तविक विजय वह है जिसमें अपना व दूसरों का हित हो । भले तात्कालिक परिणाम न भी दिखे परंतु समय पाकर दोनों का हित हो ।

व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग करके सत्यवादी, कर्तव्य-परायण, हितैषी, कार्यकुशल और तत्पर बननेवाले व्यक्ति को सफलता, न्याय व विजय वरण कर लेती है ।

चंदन की चुटकी भली, गाड़ी भली न काठ ।
बुद्धिमान एक ही भलो, मूरख भला न साठ ॥

बुद्धिमान अकेला हजारों, लाखों का भला कर सकता है लेकिन साठ मूर्ख मिलकर भी उतना भला नहीं कर सकते हैं । बुद्धिमान कौन है ? जो धर्म का पालन करे अर्थात् जो कठिनाई के बीच भी अपना सत्कर्तव्य पालता रहे और भगवान से प्रीति करते-करते परमात्मसुख की प्राप्ति कर ले । ❐

उड़ जायें कच्चे रंग, आत्मरंग में रँग जायें

- पूज्य बापूजी

(होली : २१ मार्च)

होली हुई तब जानिये, संसार जलती आग हो।
सारे विषय फीके लगें, नहिं लेश उनमें राग हो ॥

होली मनी तब समझो कि संसार जलती आग दिखे। संसार जलती आग है तो सही किंतु दिखता नहीं, यह हमारा दुर्भाग्य है। 'मेरा-तेरा, यह-वह...' जरा-जरा बात में दिन भर में न जाने कितने हर्ष के, कितने शोक के आघात लगते हैं। होली के बाद धुलेण्डी आती है। धुलेण्डी का यह पैगाम है कि तुम अपनी इच्छाओं को, वासनाओं को, कमियों को धूल में मिला दो, अहंकार को धूल में मिला दो। निर्दोष बालक जैसे नाचता है, खेलता है, निर्विकारी आँख से देखता है, निर्विकार होकर व्यवहार करता है वैसे तुम निर्विकार होकर जीयो। तुम्हारे अंदर जो विकार उठें उन विकारों के शैतान को भगाने के लिए तुम ईश्वरीय सामर्थ्य पा लो। ईश्वरीय सामर्थ्य ध्यान से मिलता है, सत्संग से मिलता है, महापुरुषों के दर्शन से उभरता है। इसलिए होली-धुलेण्डी मनायें तो किसी ऐसी पावन जगह पर मनायें कि जन्मों-जन्म की यात्रा समाप्त हो जाय, सदियों की थकान मिट जाय।

लकड़ियाँ जलायीं, आग पैदा हुई यह कोई आखिरी होली नहीं है। यह संसार में भटकनेवालों की होली है। साधक की होली कुछ और होती है। साधक तो वह होली खेलेंगे जिसमें वे संयम की, समझ की लकड़ियाँ इकट्ठी करके उनका घर्षण करेंगे और उसमें ब्रह्मज्ञान की आग जलाकर सारे विकारों को भस्म कर देंगे। फिर दूसरे दिन धुलेण्डी आयेगी, उसे निर्दोष बालक होकर खेलेंगे, **'शिवोऽहम्... शिवोऽहम्'** करके गायेंगे। एक परमात्मा की ही याद... जहाँ-जहाँ नजर पड़े हम अपने-आपसे खेल रहे हैं, अपने-आपसे बोल रहे हैं, अपने-आपको देख रहे हैं, हम अपने-आपमें मस्त हैं।

जो अपने-आपमें मस्त रह सकता है वह जहाँ जाय, जो कुछ करे उसके लिए आनंद है। जो अपने-आपमें मस्त नहीं है, जिसे अपने भीतर सुख नहीं मिला उसे कहीं सुख नहीं मिलेगा। जिसको अपने भीतर सुख मिला वह जहाँ जायेगा सुखरूप हो जायेगा, वह जो कुछ कहेगा अमृतरूप हो जायेगा, वह जो कुछ देखेगा पुण्यरूप हो जायेगा, वह जो कुछ क्रिया करेगा भक्ति बन जायेगी। जिसने भीतर की होली खेल ली, जिसके भीतर प्रकाश हो गया, भीतर का प्रेम आ गया, जिसने आध्यात्मिक होली खेल ली उसको जो रंग चढ़ता है वह अबाधित रंग होता है। संसारी होली का रंग हमें नहीं चढ़ता, हमारे कपड़ों को चढ़ता है। वह टिकता भी नहीं, कपड़ों पर टिका तो वे तो फट जाते हैं लेकिन आपके ऊपर अगर फकीरी होली का रंग चढ़ जाय... काश ! ऐसा कोई सौभाग्यशाली दिन आ जाय कि तुम्हारे ऊपर आत्मानुभवी महापुरुषों की होली का रंग लग जाय, फिर ३३ करोड़ देवता धोबी का काम शुरू करें और तुम्हारा रंग उतारने की कोशिश करें तो भी तुम्हारा रंग न उतरेगा बल्कि तुम्हारा रंग उन पर चढ़ जायेगा।

फकीरी होली का अर्थ यह है कि तुम पर एक बार ऐसा रंग चढ़ जाय जो फिर छूटे नहीं, तुम एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाओ जहाँ पहुँचने के बाद तुम्हारा गिरना न हो, जिसे पाने के बाद फिर खोना न हो । संसारी होली के रंग पाने के बाद खो जाते हैं ।

रोटी को धागा बाँधते हैं और उसे आग में सेंकते हैं तो रोटी जल जाती है लेकिन धागा ज्यों-का-त्यों रहता है। तुम्हारा शरीर भी रोटी है । माता-पिता ने रोटी खायी, उसीसे रज-वीर्य बना और तुम्हारा जन्म हुआ । तुमने रोटी खायी और बड़े हुए इसलिए तुम जिस शरीर को आज तक 'मैं' मान रहे हो उसको रोटी जैसा ही समझो । होली पैगाम देती है कि शरीररूपी यह रोटी तो जल जायेगी, सड़ जायेगी लेकिन उसके इर्द-गिर्द, अंदर-बाहर जो सूत्ररूप आत्मा है वह न जलेगा, न टूटेगा । ऐसा जो आत्मरस का धागा है, ब्रह्मानंद का धागा है उसे ज्यों-का-त्यों तुम समझ लेना ।

जो भी त्यौहार हैं, महापुरुषों ने तुम्हारे लिए वरदानरूप में गढ़े हैं । उन त्यौहारों का तुम्हें अधिक-से-अधिक लाभ मिले और तुम विराट आत्मा के साथ एक हो जाओ, तुम असली पिता के द्वार तक पहुँच जाओ यही त्यौहारों का लक्ष्यार्थ होता है। तुम्हारा असली पिता कामी नहीं है, घमण्डी नहीं है । तुम्हारा असली पिता इतना सरल है, इतना सरल है कि सरलता भी उसके आगे लज्जित हो जाती है । तुम्हारा असली पिता इतना प्रेमोन्मत्त है, इतना आनंदस्वरूप है, इतना प्रेममूर्ति है कि प्रेम भी वहाँ कुछ भीख माँगने पहुँच जाता है । तुम्हारा असली पिता इतना प्रेमस्वरूप है और वह तुम्हारे साथ है ।

होली आदि त्यौहार तुम्हें सरल बनने का एक मौका देते हैं । सेठ सेठ बनकर होली खेले तो न खेल पायेगा । अमलदार अमलदार बना रहे, बेटा बेटा बना रहे, बाप बाप बना रहे तो वह रंग नहीं आयेगा। सभी अपना अहं भूल जाते हैं तो नैसर्गिक जीवन जीने का कुछ ढंग आ जाता है । उस वक्त भीतर का आनंद आता है। ऐसा नैसर्गिक जीवन हमारे व्यवहार में हो तो हमारा व्यवहार आनंदमय हो जायेगा।

इस उत्सव ने विकृत रूप ले लिया, रासायनिक रंगों से समाज तन और मन को दूषित करने लगा । समाजरूपी देवता स्वस्थ रहे, प्रसन्न रहे, प्रभु के रंग में रँगे इसीलिए मैंने आश्रम में प्राचीन ढंग से होली का उत्सव मनाना शुरू किया । रासायनिक रंगों से होली खेलना बहुत नुकसानदायक है और पलाश के फूलों के रंग से होली खेलना हितकारी है। पलाश के फूलों से बना रंग हमारे शरीर की सप्तधातुओं को विकृत नहीं होने देता, उनमें संतुलन बनाये रखता है । यहाँ उसमें गंगाजल तथा तीर्थों का जल भी मिलाया जाता है ।

होली हुई तब जानिये,
पिचकारी गुरुज्ञान की लगे।
सब रंग कच्चे जायें उड़, एक रंग पक्के में रँगे ।।

अन्य कच्चे रंग उड़ जायें, वास्तव में एक पक्के आत्मरंग में हम रँगें, यही होलिकोत्सव का उद्देश्य है। इसलिए स्थूल होली तो ठीक है लेकिन मानसिक होली भी मनानी चाहिए। भावना करनी चाहिए की मैंने साँई को अपना रंग लगा दिया और साँईं ने हमको साँईं का रंग लगाया - जिसके पास जो हो वह दे ।

होली की रात्रि चार पुण्यप्रद महारात्रियों में आती है । होली की रात्रि का जागरण और जप बहुत ही फलदायी होता है। एक जप हजार गुना फलदायी है। इसलिए इस रात्रि में जागरण और जप कर सभी पुण्यलाभ लें । ❑

हिन्दू संस्कृति जैसी प्राणशक्ति दूसरों में नहीं है

- डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

यद्यपि इतिहास के प्रारम्भ से विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के लोग भारत में आते रहे हैं पर हिन्दू धर्म अपनी प्रधानता बनाये रखने में समर्थ रहा है । हिन्दू संस्कृति में कुछ ऐसी प्राणशक्ति है जो स्वभावतः दूसरे अधिक शक्तिशाली प्रवाहों में भी नहीं है। हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य न तो रोटी पर और न अपने काम, पूँजी, आकांक्षा अथवा प्रभुता या बाह्य प्रकृति के साथ अपने संबंध पर जीवित रहता है, वह अपने आध्यात्मिक जीवन के भरोसे जीता है । हिन्दू धर्म ईश्वर के संसार के भीतर ओतप्रोत होने की बात पर विश्वास करता है और यह मानता है कि ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें ईश्वर न हो।

हिन्दू धर्म में विचारों की अपेक्षा जीवन का मार्ग-प्रदर्शन अधिक होता है। जो भी हिन्दू संस्कृति और हिन्दू जीवन अपनाते हैं चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक, संशयवादी हों या जड़वादी सब-के-सब हिन्दू हैं। हिन्दू धर्म धार्मिक विश्वासों पर नहीं बल्कि जीवन में आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि पर जोर देता है। सत्कार्य करनेवाला, न कि इस या उस मत में विश्वास करनेवाला, दुर्गति को कभी नहीं प्राप्त होता - **न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।** **(भगवद्गीता : ६.४०)** हिन्दू धर्म नैतिक जीवन पर जोर देता है । हिन्दू धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है बल्कि उन सबका भ्रातृमण्डल है, जो सद्नियमों को मानते हैं और निष्ठापूर्वक सत्य की खोज करते हैं। इसके धर्मप्रचार की भावना उन धर्मों के धर्मप्रचार की भावना से भिन्न है, जिनका सिद्धांत मत-परिवर्तन कराना है।

हिन्दू धर्म का यह उद्देश्य नहीं है कि सम्पूर्ण मानवता को एक मत में दीक्षित करे क्योंकि यह चरित्र-निर्माण पर अधिक जोर देता है, विश्वास पर नहीं। विभिन्न देवों को पूजनेवाले और विभिन्न कर्मकांडों का अनुसरण करनेवाले हिन्दू धर्म में मिला लिये गये हैं। हिन्दुओं ने परम पराक्रमी पूर्वजों, संतों, ग्रह-नक्षत्रों और विभिन्न जनसमूहों के देवी-देवताओं - सबको अपने मंदिर में स्थान दिया। एकेश्वरवाद के आधार पर बहुदेववाद की व्यवस्था हुई पर यह कोई कट्टर एकेश्वरवाद नहीं था, जो अपने अनुयायियों को अपने से भिन्न मत रखनेवालों के प्रति गहरी असहिष्णुता का पाठ पढ़ाता।

हिन्दू धर्म सजीव तत्त्वों का बहुत व्यापक संगठन है। धार्मिक कर्मकांड और सामाजिक व्यवस्था, चाहे वे कैसे भी क्यों न हों, सैकड़ों वर्षों के अनुभवों के फल हैं। हिन्दू धर्म में जबरदस्ती या डराकर काम कराने की पद्धति नहीं है बल्कि वह समझाकर, सुझाव रखकर काम कराने पर विश्वास करता है ।

हिन्दू धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास करता है, जो आत्मा के विकास को अवरुद्ध करनेवाले बंधन को तोड़ देती है। जिस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है वह धर्म-मत नहीं, प्रत्युत चरित्र है। धर्म कोरे विश्वास का नाम नहीं है बल्कि वह सच्चरित्र-जीवन है ।

हिन्दू धर्म ने अपने से भिन्न मतवालों पर

अत्याचार करने को प्रोत्साहन नहीं दिया । अन्य धर्मों की अपेक्षा इसका इतिहास पवित्र है । विभिन्न सम्प्रदायों को इसने एक में संगठित कर शांतिपूर्वक रखा है । जब दो या तीन धर्म यह दावा करते हैं कि उन्होंने परम सत्य का साक्षात्कार किया है और उस सत्य को अपनाना ही स्वर्गप्राप्ति का एकमात्र साधन है तो संघर्ष होना निश्चित है । इस संघर्ष में एक धर्म दूसरे धर्म को अपने से एक पग आगे नहीं बढ़ने देगा और जब तक संसार धूल में नहीं मिल जायेगा कोई भी अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सकेगा। अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य सभी धर्मों को नष्ट कर देना धर्म के क्षेत्र में विद्रोह है, जिसे हमें अवश्य रोकना चाहिए पर यह हम तभी रोक सकते हैं जब हिन्दू धर्म में बतायी गयी विधि के समान किसी विधि को अपनायें, जिसमें धर्म की एकता किसी एक बात पर ईमान लाने पर नहीं, प्रत्युत एक समान लक्ष्य की प्राप्ति पर स्थापित हो। **मुझे निश्चित लगता है कि भविष्य में धार्मिक संघर्ष संबंधी समस्याओं को हल करने में हिन्दू पद्धति अपनायी जायेगी ।** □

बिनु नावै को संगि न साथी
मुकते नामु धिआवणिआ ।

नाम के बिना कोई संगी-साथी नहीं होता और जो नाम को स्मरण करनेवाले हैं, वे मुक्त हुए हैं । **(गु.ग्रं.सा. १. माझ. असटपदीआ. म. १. घरू, १.१.४)**

सदा हजूरि दूरि न जाणहु ।
गुरसबदी हरि अंतरि पछाणहु ।

वह परमेश्वर सदा निकट है, उसे दूर न समझो । सद्गुरु के उपदेश से हरि को हृदय में ही पहचानो ।

(गु.ग्रं. सा. : १. माझ म. ३. ११, १२.८)

होली निराली

गुरुज्ञान की होली निराली,
मिटी अविद्या, अहंता काली,
जीवन धन की हो रखवाली,
आयी है ऋतु बसंत बहार ।

पलाश के रंग हैं प्यारे,
भर भर गुरु पिचकारी मारे,
भीगे भक्त-हृदय प्रभु प्यारे,
बरसी सात्त्विक रंगों की बौछार ।

रामनाम रँगी चित्त-चोली,
भस्म हो भेदभाव की खोली,
जली ईर्ष्या, राग-द्वेष की होली,
घट-घट में वही सिरजनहार ।

ब्रज में मनमोहन ने खेली,
ग्वाल-गोपियाँ साथी हमजोली,
उमड़ा आनंद, चित्त-चेतना डोली,
छलकी परम स्नेह रसधार ।

प्रकट थंभ से नरसिंह अवतार,
हिरण्यकश्यप का किया संहार,
भक्त प्रह्लाद के रक्षक करतार,
हरि दीनबंधु हैं प्राण आधार ।

प्रभुप्रीति भक्ति का रंग गुलाल,
मिटे चिंता, चाहत, रंज, मलाल,
शील धर्म हो, हृदय विशाल,
'साक्षी' साहिब हैं सत्य सार ।

– जानकी (साक्षी)

पावन कर दी जीवनधारा

महाराष्ट्र के सातारा जिले के गोंदवले गाँव में ब्रह्मचैतन्य गोंदवलेकर महाराज नामक ब्रह्मनिष्ठ योगी महापुरुष हो गये । आत्मानन्द की मस्ती में विचरण करते हुए एक बार शाम के समय वे आबू के जंगल से गुजरे । वहाँ चोरी-डकैती करनेवाले भीलों की एक टोली ने उन्हें घेर लिया ।

एक भील बोला : ''लगता है यह हमारे जैसा ही चोर है । चलो, इसे अपनी बस्ती में ले चलते हैं ।''

महाराज उनके साथ चल दिये । वे भील महाराज का मजाक उड़ाने लगे । किसीने उनकी चोटी खींची, किसीने उनका हाथ खींचा तो किसीने उनकी पीठ पर मुक्का मारा लेकिन महाराज चुपचाप चलते रहे । परमहंस तुकाराम चैतन्य से योग-सामर्थ्य एवं आत्मज्ञान प्राप्त किये हुए इन सिद्धपुरुष की एक हुँकारमात्र प्रलयकारी परिस्थिति का सर्जन करने के लिए काफी थी परंतु महाराज शांत भाव से सब सहते जा रहे थे । ऐसे महापुरुषों पर संसार का कौन-सा गणित लागू पड़ता है ?

तस्य तुलना केन जायते ?

एक बूढ़ा भील सोचने लगा, 'हट्टे-कट्टे शरीरवाला यह तेजस्वी आदमी हमारी टोली द्वारा इतने कष्ट दिये जाने पर भी व्याकुल नहीं होता, वेदना की एक लकीर भी इसके चेहरे पर दिखायी नहीं देती, बड़ा आश्चर्य है !'

वह बोला : ''भाइयो ! यह कोई साधारण मनुष्य नहीं लगता, जरूर इसके पास कोई मंत्रशक्ति है । इसे कष्ट न दो । हम इससे वह प्राप्त करेंगे ।''

डकैतों की टोली बस्ती में पहुँची । सब भोजन करने बैठे । बूढ़े भील ने आदरपूर्वक महाराज से भोजन स्वीकार करने की विनती की । महाराज बोले : ''मैं केवल दूध पीता हूँ, दूसरा कुछ नहीं खाता ।''

बूढ़े भील ने अपने एक साथी को महाराज के लिए दूध लाने भेजा । वह भील सोचने लगा, 'हमारे द्वारा इतने कष्ट दिये जाने पर भी यह शांत रहा, ठीक है लेकिन मैं इतने में हार माननेवाला नहीं हूँ । मैं इस बाबा को रुलाकर ही रहूँगा ।'

वह दूध न देनेवाली एक मरकही गाय को ले आया । महाराज के हाथ में मटका देते हुए वह बोला : ''बाबा ! यह गाय बहुत दूध देती है । आप स्वयं दुहकर पी लीजिये ।''

महाराज ने प्रेम से गाय की पीठ पर हाथ फेरा और बोले : ''माते ! मुझे बहुत भूख लगी है । भूख शांत हो जाय इतना दूध तू दे दे ।''

महाराज के इतना कहते ही गाय वात्सल्यभाव से भरकर उनके चरणों को चाटने लगी और महाराज ने गाय को दुहकर धारोष्ण दूध का पान किया ।

डकैतों को बड़ा विस्मय हुआ । उनमें से एक बोला : ''ये तो कोई बड़े महापुरुष हैं । हमने मूर्खतावश इन्हें कितना कष्ट दिया !''

सब महाराज के चरणों में प्रणामकर क्षमा माँगने लगे : ''महाराज ! हम पापियों को माफ कीजिये । अज्ञानतावश हमसे बड़ी भारी भूल हुई है ।''

महाराज बोले : ''अरे, इस प्रकार चोरी-डकैती, मारकाट करते हुए हीरे से भी मूल्यवान यह मानव-जीवन व्यर्थ न गँवाओ । सदा मेरे राम का नाम लो । वह रोजी-रोटी ही नहीं, तुम्हारी सब जरूरतें पूरी करेगा ।''

उन भीलों ने उस दिन से चोरी-डकैती छोड़ महाराज का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया । ❑

विद्यार्थी-जीवन की उत्तम खुराक

- श्री विनोबाजी भावे

संपूर्ण जीवन की बुनियाद 'विद्यार्थी-जीवन' है। विद्यार्थी-अवस्था में देह की खुराक के साथ आत्मा के लिए भी उत्तम खुराक मिलनी चाहिए। उस पौष्टिक खुराक का नाम है - 'ब्रह्मचर्य'। इससे बढ़कर आत्मा के लिए कोई पौष्टिक आहार उपलब्ध नहीं है। विद्यार्थी-अवस्था के बाद भी यह कल्याणदायी ही है लेकिन कम-से-कम विद्यार्थी-अवस्था में तो यह खुराक मिलनी ही चाहिए।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि पर काबू तथा काबू के साथ तीनों का पूरा विकास और साथ ही उनका उपयोग आत्मदर्शन (अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान पाने) में करना। इसीका नाम है 'ब्रह्मचर्य'। ब्रह्मचर्य के तीनों अंग, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि, भगवान की दी हुई बड़ी भारी शक्ति है। यदि घुड़सवार घोड़े को अच्छी तरह सँभाल सका तो उस पर सवारी भी वह अच्छी तरह कर सकेगा, अन्यथा घोड़ा छाती पर और सवार नीचे, ऐसी स्थिति हो जायेगी। यही हालत उस मनुष्य की होती है, जिसका अपनी इन्द्रियों, मन और बुद्धि पर काबू नहीं होता।

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि पर काबू पाने के साथ उनका पूरा विकास भी करना चाहिए। जो अपनेको उनसे अलग मानेगा, वह उनका उत्तम विकास भी कर सकेगा। विषयासक्ति से भरे सिनेमा के रद्दी गाने सुनने को मिलते हैं तो मन और कान उधर जाना चाहते हैं। **जो बेवकूफ उनके अनुसार चलेगा वह उनका विकास क्या कर सकेगा ? वह तो मन की शक्ति को क्षीण ही करेगा लेकिन जो कानों को ज्ञान-चर्चा और भगवद्-चर्चा सुनने में लगायेगा उसकी कर्णेन्द्रिय का उत्तम विकास होगा और उसके मन-बुद्धि भी विकसित होंगे।**

ज्ञानप्राप्ति के लिए ज्ञानी महापुरुष की सेवा करनी होती है, उनका दिल जीतना होता है। अतः भीतर नम्रता चाहिए। अपने मन पर अंकुश रखे बिना यह संभव नहीं। अगर यह सब नहीं करते हैं तो ज्ञान भी नहीं मिल सकता। मन, बुद्धि और इन्द्रियों के विकासार्थ ज्ञानी की शरण आवश्यक है। ज्ञानी महापुरुष का आश्रय और उनकी सत्संगति ब्रह्मचर्य का ही एक अंग है। इसी तरह सज्जन-सेवा और सद्ग्रंथ-पठन भी ब्रह्मचर्य में समाविष्ट हैं। परनिंदा, मिथ्याभाषण न करना-न सुनना, व्यर्थ के विषयों में मन की शक्ति खर्च न करना इत्यादि अगर हम करते हैं तो तीनों की शक्ति विकसित होती है। यह ब्रह्मचर्य का दूसरा अर्थ है।

तीसरा अर्थ है इन विकसित साधनों के आधार से उस परमात्मा के दर्शन करना, जो हममें है, दूसरों में है, सर्वत्र जिसके दर्शन प्राप्त हैं। ये दर्शन सूक्ष्म होने से अपनी इन बाह्य आँखों से नहीं होते। बाहरी दुनिया के रूप, शब्द और विषयों का आकर्षण जब तक मौजूद है, तब तक न अंदर ध्यान लग सकता है, न भीतर गोता लगाया जा सकता है, न ही अंदर का रूप दिख सकता है, फिर गहराई में छिपी हुई चीज कैसे मिलेगी ? नारियल का ऊपर का छिलका निकालते हैं तब अंदर की चीज मिलती है, वैसे ही हृदय के ऊपर भी जो एक-पर-एक स्तर लगे हुए हैं उनको पार कर भीतर तक पहुँचने से ही परमात्मदर्शन हो सकते हैं। जब तक बाहर नजर है तब तक भीतर नजर जा नहीं सकती। अंदर नजर डालने की आदत से ही वे दर्शन हो सकते हैं और ब्रह्मचर्य की पूर्ति हो सकती है। □

सेवा की महिमा

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

अपनी सेवा वही है जो अपनेको परिस्थितियों का गुलाम न बनाये, परिस्थितियों की दासता से मुक्त करे। जो व्यक्ति परिस्थितियों की दासता से मुक्त है वही स्वतंत्र है और जो स्वतंत्र है, जो अपनी सेवा कर सकता है वही विश्व की सेवा कर सकता है, चाहे उसके पास रुपया-पैसा कुछ भी न हो। पद या कुर्सी मिलने से सेवा होगी और बिना कुर्सी के सेवा नहीं होगी यह नासमझी है। भूखे को अन्न देना, प्यासे को पानी देना, निर्वस्त्र को वस्त्र देना इतनी ही सेवा नहीं है; किसीको दो मीठे शब्द बोलना, उसके दुःख को हरना यह भी बड़ी सेवा है। कुसंगी को सत्संगी बनाना यह बड़ी सेवा है। अभक्त को भक्त बनाना और उलझे हुए की उलझनें मिटाना यह भी सेवा है।

सेवा का फल चाहना सेवाधर्म को भ्रष्ट करना है, सेवा के फल को तुच्छ करना है। सेवा से जो बदला चाहता है वह सेवा के धन को कीचड़ में डाल देता है। सेवा करे और चाहे कि बदले में मुझे कुछ मिले, मेरा यश हो, मुझे पद मिले... तो वह सेवक व्यक्तित्व बनाना चाहता है और व्यक्तित्व हमेशा सत्य के विरोध में खड़ा रहेगा। जब व्यक्तित्व सत्य के विरोध में खड़ा रहेगा तो सच्चाई से सेवा भी नहीं करने देगा। सच्चाई से सेवा नहीं करने देगा तो अंतर का सुख, मुक्ति भी नहीं पाने देगा।

सेवा के बदले कुछ न चाहो। जब कुछ न चाहोगे तो जिसका सब कुछ है वह संतुष्ट होगा, अपना अंतरात्मा तृप्त होगा, खुश होगा। फिर कुछ न चाहनेवाले को सब कुछ मिलता है। जो कुछ चाहता है वह कुछ गँवाता है लेकिन जो कुछ नहीं चाहता वह सब कुछ वाले को पाता है। जो किसीको प्रेम करता है वह किसीसे द्वेष करेगा लेकिन जो किसीको प्रेम नहीं करता वह सबको प्रेम करता है और जो सबको प्रेम करता है वह किसी व्यक्तित्व में, परिस्थिति में बँधता नहीं है, वह निर्बन्ध हो जाता है। जो निर्बन्ध हो जाता है, उसका दूसरों को भी निर्बन्ध करने का सामर्थ्य निखरता है।

सच्ची सेवा का उदय उसी दिन से होता है जब सेवक भले सेवा कम कर ले लेकिन सोचे कि यह मिटनेवाला नश्वर शरीर पता नहीं कब छूट जाय, जब तक शारीरिक क्षमता है, इस नश्वर तन से सेवा करूँ और भाव सबके लिए अच्छा रखूँ - यह मन से सेवा करे और लक्ष्य सबका ईश्वरीय सुख बनाऊँ - यह बुद्धि से सेवा करने का निर्णय कर ले और बदले में मुझे कुछ नहीं चाहिए - ऐसा दृढ़ भाव रखे, क्योंकि शरीर प्रकृति का है, मन प्रकृति का है, बुद्धि प्रकृति की है और जहाँ सेवा कर रहे हैं वह संसार प्रकृति का है, संसार के लोग प्रकृति के हैं, संसार की परिस्थितियाँ प्रकृति की हैं। प्रकृति की चीज प्रकृति को अर्पण कर देने से आप प्रकृति के दबाव और प्रकृति के आकर्षण से मुक्त हो जाते हैं। जब प्रकृति के दबाव और आकर्षण से मुक्त हो गये तो आप परमात्मा में टिक गये। जो आपका स्वतः स्वभाव था आप उसमें टिक गये, उसके आनंद में डूब गये। यह एक दिन की बात नहीं है, धीरे-धीरे होगा।

आपके पास शारीरिक बल, मानसिक बल, बौद्धिक बल जितना भी हो, चाहे मुट्ठी भर हो, उसका आप ईश्वर की विराट सृष्टि में ईश्वर की प्रसन्नता के लिए सदुपयोग करो । सदुपयोग मतलब उससे सेवा करो तो आप पाओगे कि ज्यों-ज्यों आप अपनी योग्यता सेवा में लगा रहे हैं, त्यों-त्यों आपकी योग्यता जादुई ढंग से बढ़ रही है । शक्ति, संपत्ति और योग्यता होने पर भी जो इनका सदुपयोग सेवा में नहीं करते, वे आलसी हैं, प्रमादी हैं, सुख-आसक्त हैं, अहंकार-भोगी हैं, अहम् के पोषक हैं और भाग्यहीन हैं । यही चीजें उनको जन्म-मरण में बाँधती रहती हैं । हमारे पास जो भी योग्यता है वह देनेवाले की सृष्टि की सेवा करने के लिए है ।

सच्चा सेवक दुःख मिटाने की चिंता नहीं करता, वह तो सुख बाँटने में लग जाता है तो लोगों के दुःख अपने-आप मिट जाते हैं और वह स्वयं भी सुखी होता जाता है । दुःख मिटाना ही सेवा नहीं, सुख बाँटना सच्ची सेवा है । जब सुख बाँटोगे तो दुःख रहेगा कहाँ और सुख खुटेगा क्यों ? किसीके दुःख मिटाने के बदले उसको सुखी करने का पौरुष करनेवाला सेवक ज्यादा सफल होता है । दुःख मिटाना पर्याप्त नहीं है उसे सुखी करना, प्रसन्न करना और सच्चे सुख की राह पर लगा देना यह बहुत-बहुत ऊँची सेवा है ।

स्वामी विवेकानंदजी बोलते थे कि तुम सेवा करते हो तो यह न सोचो कि ये दीन-हीन हैं और मैं नहीं होता तो इन बेचारों का क्या होता ? नहीं-नहीं, ईश्वर ने हमें सेवा करने की क्षमताएँ दी हैं तो यह उस ईश्वर की कृपा है और कोई सन्मार्ग पर सचमुच हमारी सेवा ले रहा है तो उसको भी धन्यवाद है । गाड़ी में लोग बैठें नहीं तो गाड़ी किस काम की ? ऐसे ही हमारी वस्तुओं और योग्यताओं का लोगों के लिए उपयोग नहीं हो तो वे किस काम कीं ? आप तो ईश्वर के नाते सेवा करो व उस सेवा में और सुगन्धि लाओ कि जिनकी भी सेवा करते हैं वे सब ईश्वर की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं ।

अगर वस्तुओं और योग्यताओं का उपयोग अपनी वासनाओं को, अपने अहंकार को बढ़ाने में होता है तो हम तो बर्बाद हो गये । हमें आत्मिक आबादी चाहिए । रावण और कंस क्यों विफल रहे ? क्यों अभी तक फटकार पाते हैं ? क्योंकि वस्तुएँ और योग्यताएँ तो उनके पास बहुत सारी थीं लेकिन उन्होंने उन सबको अहंकार-विसर्जन और सेवा में न लगाकर अहंकार को पुष्ट करने, वासनाओं को पोसने में लगाया इसीलिए वे विफल रहे । भगवान रामजी और भगवान श्रीकृष्ण के पास जो वस्तुएँ तथा योग्यताएँ थीं वे सब उन्होंने सेवा में लगा दीं तो रामजी और कृष्णजी अभी तक भारत के हर दिल पर राज्य कर रहे हैं ।

अतः अपने स्वार्थ, अहंकार या दूषित वासनाओं को पोसने की, दूसरे को नीचा दिखाने की और सेवा का प्रदर्शन करने की आपके चित्त में जो भी वासना, बेवकूफी या भाव है, उसको उखाड़कर फेंक दो तो आपके हृदय की शांति, समझ और सूझबूझ बढ़ती जायेगी तथा आपकी सेवा सेव्य (परमात्मा) को प्रकट कर देगी । निष्काम कर्मयोग अपना स्वतंत्र योग है । जैसे ज्ञानयोग, सांख्ययोग मुक्ति देने में स्वतंत्र हैं, ठीक ऐसा ही दर्जा है निष्काम कर्मयोग का । निष्काम कर्मयोग भी मुक्ति देने में स्वतंत्र है ।

सेवा के बदले में मान न चाहो । सेवक होकर जो मान चाहे वह सेवा को बेच रहा है, फेंक रहा है, शरीर का अहंकार पोसने के लिए सेवा को नष्ट कर रहा है । सेवा के बदले में भोग न चाहो, सुख न चाहो । जब सुख और मान की अभिलाषा को हटाने के लिए व्यक्ति सेवा करता है तो सुख व मान पर उसका अधिकार हो जाता है और

अंदर से ही उसका सुख एवं सम्मानित जीवन प्रकट होने लगता है।

सेवा के बदले में दूसरे को दबाने की क्षमता न चाहो। सेवा करते जाओ, जो आपका दुश्मन है उसका भी हृदय जीतो। आपका दुश्मन जिन कारणों से दुःखी है उन कारणों को आप हटाते जाओ। फिर देखो दुश्मन पर आपकी कैसी विजय होती है ! यह ऐसी सेवा है महाराज ! गजब कर देगी ! आपको स्वामी पद पर बैठा देगी। आप विश्वजीत हो जाओगे। दुर्योधन युधिष्ठिर को दुश्मन मानता था लेकिन वह कहता था कि युधिष्ठिर झूठ नहीं बोलेंगे। दुर्योधन अगर फँस जाता, कोई निर्णय नहीं कर पाता तो युधिष्ठिर से निर्णय करवाता। दुर्योधन भीतर से युधिष्ठिर का भक्त था। ऐसा कह लो कि दुर्योधन भीतर से युधिष्ठिर का शिष्य हो गया था।

सेवक को विघ्न-बाधा आये तो जो तत्त्व विघ्न-बाधा डालते हैं उनकी बुराई नहीं लेकिन उनका जिसमें भला हो, ऐसी कोशिश करे। उनकी वासना और उनका अहंकार घटे ऐसी कोशिश करे, खिदमत के भाव से उन तत्त्वों को, उन विरोधों को हटाये तो वह सेवक सेव्य पद (परमात्मपद) को पा लेगा।

सेवक में इतनी शक्ति होती है कि वह अगर ईमानदारी से सेवा करता है और अपनी सेवा में विफल होता है तो स्वामी-परमात्मा उसको सहाय करता है। जहाँ दंड की जरूरत हो वहाँ दंड देता है और जहाँ पुरस्कार की जरूरत है वहाँ पुरस्कार देता है। सृष्टिकर्ता के हृदय में सबका मंगल छुपा है। ऐसे ही सेवक के हृदय में भी सबका मंगल छुपा होगा तो वह सृष्टिकर्ता के स्वभाव के साथ अपने स्वभाव का तालमेल करके बहुत सुख और ऊँचाइयों में स्थिति अनुभव कर सकता है। □

शरणागति योग : सलामत योग

- पूज्य बापूजी

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

'हे भारत ! तू संपूर्ण भाव से उस ईश्वर की शरण चला जा। उसकी कृपा से तू परम शांति और शाश्वत स्थान को प्राप्त हो जायेगा।'

(गीता : १८.६२)

'परम शांति' का मतलब है संसार के आकर्षणों से उपरति और 'शाश्वत स्थान' का मतलब है परम पद, आत्मपद। यह कैसे मिलेगा ?

तू अपने अहं की शरण छोड़, अपनी मान्यताओं की शरण छोड़, देहाध्यास की शरण छोड़ और उस अंतर्यामी की शरण चला जा।

वर्तमान वस्तु का अनादर, आनेवाले की इंतजारी और बीते हुए का सुमिरन करना- यह मनुष्य-जाति का आश्चर्यकारक स्वभाव रहा है। इसे मनुष्य की कमजोरी कहो, दुर्भाग्य कहो, जो कहो। भगवान साथ में हैं लेकिन अर्जुन भगवान के सान्निध्य का पूरा फायदा नहीं ले रहा है, इसलिए भगवान ने कहा : मेरी पूर्ण शरण नहीं लेता है, मेरी बात नहीं मानता है तो फिर तू अंतर्यामी की शरण चला जा।

वास्तव में अंतर्यामी आत्मा-परमात्मा और श्रीकृष्ण अभिन्न-एक ही हैं। फिर भी अर्जुन को साकार स्वरूप में श्रद्धा नहीं होती तो भगवान

कहते हैं : अंतर्यामी की शरण जा। कैसे भी करके अपना कल्याण कर।

'अंतर्यामी की शरण' का मतलब है जो तुम्हारे मन, बुद्धि और इन्द्रियों का आधारभूत साक्षी परमात्मा है, जो करन-करावनहार है । उसीकी प्रेरणा, उसीकी कृपा और उसीके साथ तादात्म्य करके तुम अपने चित्त को जोड़ दो, इससे कार्य करने का बोझा अथवा कर्म करने का बंधन तुम्हारे सिर से हट जायेगा, तुम्हारा मस्तिष्क और अंतःकरण निर्भार होने लगेगा।

कर्म करना तुम्हारा स्वभाव है। शरीर प्रकृति का है। क्रिया से ही शरीर पैदा हुआ, क्रिया से ही जी रहा है, सतत क्रिया हो रही है। जो ईश्वर-प्रीत्यर्थ क्रिया करते हैं वे भगवान की शरण होते हैं। जो मनुष्य भगवान की शरण छोड़कर किसी और की शरण लेता है उसको देर-सवेर रोना ही पड़ता है।

हर मनुष्य, हर जीव बड़े की शरण लेता है और जो बड़ा दिखता है वह और किसी बड़े की शरण लेता है और बड़ा और बड़े की शरण लेता है। हर छोटा आदमी अपने से कुछ बड़े की शरण लेता है लेकिन उसकी अपेक्षा बड़े-में-बड़ा जो है, वह जिसके साथ जुड़ा है उसीके साथ सीधा जुड़ जाय तो बेड़ा पार हो जायेगा, निहाल हो जायेगा। सच बात तो यह है कि जाने-अनजाने हम जितने अंश में भगवान की शरण होते हैं, उतने ही अंश में हम निर्भार, निर्द्वन्द्व और सुखी होते हैं। अगर भगवान को छोड़कर और किसी सेठ, साहूकार, धन, पदवी, चतुराई, बेईमानी या और किसी वस्तु-व्यक्ति की शरण होते हैं, किसी पद की शरण होते हैं तो हमारे अंतःकरण में पूरी निश्चिंतता नहीं होती है। संत कबीरजी ने सुंदर कहा है :

कबीरा इह जग आयके बहुत से कीन्हे मीत।
जिन दिल बाँधा एक से वे सोये निश्चिन्त ॥

जिसने एक परमात्मा से दिल बाँधा है वह निश्चिंत रहेगा, बाकी तो मुख्यमंत्रियों और प्रधानमंत्री को रिझा लो लेकिन अंतर्यामी परमात्मा से बिगाड़ते हो तो सब बिगड़े हुए मिलेंगे और तुम अंतर्यामी आत्मा से तादात्म्य करते हो तो तुम्हारे बिना रिझाये सब रीझे हुए मिलेंगे और तुम्हारे दर्शन करके आशीर्वाद के लिए लोग कतारें लगाकर भी अपना भाग्य बनाने को तत्पर हो जायेंगे। यह भगवान की शरण की महिमा है !

दुःशासन द्रौपदी की साड़ी खींच रहा था। द्रौपदी युधिष्ठिर की तरफ देखती है, अर्जुन की तरफ देखती है, भीम की तरफ देखती है। उनकी शरण लेते हुए आखिर भीष्म पितामह की शरण लेती है। कुछ नहीं हुआ। सब बड़े-बड़े महारथियों की तरफ देखती है, आक्रंद करती है, 'बचाओ-बचाओ' कहती है लेकिन सारे बचानेवाले किसी-न-किसी बाधा में, किसी-न-किसी बंधन में, किसी-न-किसी कल्पना और मान्यता के बंधन में बँधे हैं। आखिर जब द्रौपदी बाहर की शरण छोड़कर, 'हे द्वारिकाधीश !' कहती है तो द्रौपदी की साड़ी में परमात्मा साड़ी का अवतार ले लेते हैं। दुःशासन साड़ी खींचते-खींचते थक गया, पसीने से तर-बतर हो गया लेकिन वह अभागा सफल नहीं हुआ और बोलने लगा कि 'यह नारी है कि साड़ी है ?' न नारी है, न साड़ी है; किसीके लिए तेरा अंतर्यामी परमात्मा साड़ी-अवतार हो गया है।

हमलोगों को चाहिए कि हम धन की शरण, झूठ-कपट की शरण, सत्ता की शरण, टोने-टोटके की शरण, राजनीति की शरण - ये छोटी-छोटी शरण न लें। भगवान सत्यस्वरूप हैं, हम सत्य की शरण जायें। भगवान आनंदस्वरूप हैं हम भगवान के आनंद की शरण जायें। भगवान प्राणिमात्र के सुहृद हैं तो हम सुहृदता के भाव को बढ़ायें न कि शोषण के भाव को। जो भगवान में

गुण हैं उन गुणों का हम आदर करेंगे तो हम भगवान की शरण हो जायेंगे और जो असुरों के चोरी-जारी, कपट, निंदा, शोषण आदि दुर्गुण हैं, ऐसे दुर्गुणों का सेवन करेंगे तो भगवान की शरण का फायदा नहीं मिलेगा । भगवान की शरण जितने अंश में ठीक-से होती है, उतना ही जीवन में सहज, स्वाभाविक सामर्थ्य आता है ।

भगवद्-शरणागति के कई उपाय हैं । एक तो भगवान के आश्रय हो जाना चाहिए। जैसे हम पृथ्वी के आश्रय हैं । सोते हैं तो भी पृथ्वी के आश्रय हैं, चलते हैं, घूमते हैं, गाड़ी में बैठते हैं तो भी आसरा पृथ्वी का ही रहता है । तो जैसे शरीर पृथ्वी का आश्रय लेता है, ऐसे ही तुम्हारा मन भगवान का आश्रय लेकर ही जीता है, यह बात तुम समझ जाओ ।

दूसरा है अवलंबन । आश्रय भी भगवान का, अवलंबन भी भगवान का । जैसे किसीका एक्सीडेंट हो गया और उसकी भुजा टूट गयी । भुजा टूट गयी तो गले में पट्टी डालकर भुजा अवलंबन लेगी, लटकती रहेगी अर्थात् हाथ गले पड़ गया । ऐसे ही तुम भगवान के गले पड़ जाओ । ठाकुरजी के गले पड़ जाओ । जैसे बच्चा इधर-उधर कुछ करता है लेकिन देखता है कि मुसीबत है तो माँ के गले पड़ जाता है, बाप के गले पड़ जाता है, दादा-दादी के गले पड़ जाता है । मध्य रात को सबको दौड़-भाग करवा देता है । बच्चे के पास कला होती है । तुम भी बच्चे होकर तो आये हो । वह कला तुममें छुपी है । तो तुम भगवान के गले पड़ना सीखो।

बोले : 'मन नहीं लगता ।' तो भगवान से कहो : 'महाराज ! मन नहीं लगता है । हम तो जैसे-तैसे हैं, तेरे हैं । मन नहीं लगता । लगा दो ना... लगा दो ना...' ऐसा करके रोओ । देखो, फिर रोने का भी मजा आयेगा और वह तुम्हारा रुदन सुन लेगा ।

तीसरा है अधीनता । जैसे बालक माँ के अधीन हो जाता है- माँ चाहे जहाँ बिठाये, जहाँ सुलाये, जहाँ खिलाये... , ऐसे ही तुम भगवान के अधीन हो जाओ कि जो हुआ, अच्छा हुआ । जरा-जरा बात में दुःख, जरा-जरा बात में भय, जरा-जरा बात में चिंता क्यों करना ? मेरा क्या होगा, बेटे का क्या होगा, बेटी का क्या होगा ?

काहू डोलत प्रानिया तिद राखेगो सर्जनहार ।

भगवद्-शरणागति योग बड़ा सलामत योग है । भगवद्-शरण जानेवाला पुरुष तमाम आपदाओं से सहज में ही बच जाता है । मनुष्यों के सारभूत जो परमात्मा हैं, वे तुम्हारा आत्मा होकर बैठे हैं । अगर उनकी शरण जाने का इरादा हो जाय तो तुम्हारे दुःख तो दूर हो जायेंगे, साथ ही तुम्हारा चित्त चैतन्य के आनंद और करुणा से भर जायेगा । □

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) 'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें । पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

✻ 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है । जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा ।

भगवान किस पर प्रसन्न होते हैं ?

जो पुरुष दूसरों की निन्दा, चुगली अथवा मिथ्या भाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता जिससे दूसरों को खेद हो, उस पर निश्चय ही भगवान केशव प्रसन्न रहते हैं। जो पुरुष दूसरों की स्त्री, धन और हिंसा में रुचि नहीं रखता, उस पर सर्वदा ही भगवान केशव सन्तुष्ट रहते हैं। जो मनुष्य किसी प्राणी अथवा (वृक्षादि) अन्य देहधारियों को पीड़ित या नष्ट नहीं करता तथा जो देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों की सेवा में सदा तत्पर रहता है, उस पर गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रों के समान ही समस्त प्राणियों का भी हितचिंतक होता है, वह सुगमता से ही श्रीहरि को प्रसन्न कर लेता है। जिसका चित्त रागादि दोषों से दूषित नहीं है उस विशुद्ध चित्त पुरुष पर भगवान सदा सन्तुष्ट रहते हैं।

जो जितेन्द्रिय पुरुष दोषों के समस्त हेतुओं को त्याग देता है, उसके धर्म, अर्थ और काम की थोड़ी-सी भी हानि नहीं होती। जो व्यक्ति क्रोधित को शांत करता है, सबका बंधु है, मत्सरशून्य है, भयभीत को सांत्वना देनेवाला है और साधु-स्वभाव है, उसके लिए स्वर्ग तो बहुत थोड़ा फल है। जो विद्या-विनय सम्पन्न, सदाचारी, प्राज्ञ पुरुष पापी के प्रति पापमय व्यवहार नहीं करता, कुटिल पुरुषों से भी प्रिय भाषण करता है तथा जिसका अंतःकरण मैत्री से द्रवीभूत रहता है, मुक्ति उसकी मुट्ठी में रहती है।

यज्ञों का यजन करनेवाला पुरुष भगवान का ही यजन करता है, जप करनेवाला उन्हींका जप करता है और दूसरों की हिंसा करनेवाला उन्हींकी हिंसा करता है क्योंकि भगवान हरि सर्वभूतमय हैं। अतः सदाचारयुक्त पुरुष उन्हींकी उपासना करता है।

जो वीतराग महापुरुष कभी काम, क्रोध और लोभादि के वशीभूत नहीं होते तथा सर्वदा सदाचार में स्थित रहते हैं उनके प्रभाव से ही पृथ्वी टिकी हुई है। साधु पुरुष का जो आचरण होता है, उसीको सदाचार कहते हैं। सदाचारी पुरुष इहलोक और परलोक दोनों को ही जीत लेता है। जो कार्य इहलोक और परलोक में प्राणियों के हित का साधक हो, मतिमान पुरुष मन, वचन और कर्म से उसीका आचरण करे। **('श्रीविष्णु पुराण' से संक्षिप्त)** ❑

जीवनोपयोगी बातें

✲ वास्तु के मुख्य द्वार के सामने भोजन-कक्ष, रसोईघर या खाने की मेज नहीं होनी चाहिए।

✲ भूमि-पूजन, वास्तु-शांति, गृह-प्रवेश आदि सामान्यतः शनिवार एवं मंगलवार को नहीं करने चाहिए।

✲ मुख्य द्वार के अलावा पूजाघर, भोजन-कक्ष एवं तिजोरी के कमरे के दरवाजे पर देहरी (दहलीज) अवश्य लगवानी चाहिए।

✲ गृहस्थियों के शयन-कक्ष में सफेद संगमरमर नहीं लगवाना चाहिए। यह मंदिर में लगाने हेतु उचित है क्योंकि पवित्रता का द्योतक है।

✲ प्लाट या मकान के नैर्ऋत्य कोने में बना कुआँ अथवा भूमिगत जल की टंकी सबसे ज्यादा हानिकारक होती है। इसके कारण अकाल मृत्यु, हिंसाचार, अपयश, धन-नाश, खराब प्रवृत्ति, आत्महत्या, संघर्ष आदि की संभावना बहुत ज्यादा होती है।

बलानां श्रेष्ठं बलं प्रज्ञाबलम्

- पूज्य बापूजी

'महाभारत' के उद्योग पर्व (३७.५५) में आता है :

यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते ।

'जो बलों में श्रेष्ठ बल है वह बुद्धि का बल है ।'

विश्व में सबसे बड़ा बल है बुद्धि का बल । हाथी में शरीर का बल बहुत है, सिंह में ब्रह्मचर्य का ओजबल है लेकिन सिंह को भी पिंजरे में लानेवाले मनुष्य की बुद्धि का बल दोनों को नचा देता है। ऐसे बुद्धिबलवाले मनुष्य को और अधिक बुद्धिबलवाला सर्कस का मैनेजर तथा मालिक नचाता है। सर्कस के मैनेजर तथा मालिकों पर भी जिलाधीश का प्रभाव रहता है । जिलाधीश के बुद्धिबल से भी सामाजिक बल, लोकसंग्रह का बल जिनके पास है, ऐसे नेताओं, मंत्रियों के आगे जिलाधीश सिकुड़ जाता है। बुद्धिबल जितना ज्यादा होता है, व्यक्ति उतना ही उन्नत हो जाता है, शासक बन जाता है लेकिन सर्वोपरि बुद्धिबल तो उनका होता है जिन्होंने अपनी बुद्धि परमात्मा में प्रतिष्ठित कर दी है। बुद्धिबल, जनबल, धनबल होने पर भी राजे-महाराजे, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री आदि जिन्होंने परमात्मा में विश्रांति पायी ऐसे महापुरुषों के चरणों में नतमस्तक होकर अपने भाग्य की कठिन रेखाओं को बदलने में सफल हो जाते हैं।

ईश्वर में विश्रांति पाने से बुद्धि में विलक्षण लक्षण आ जाते हैं। मनुष्य की लाख-लाख योग्यताओं में से एक हिस्सा योग्यता विकसित हुई है, निन्यानवें हजार नौ सौ निन्यानवें क्षमताएँ छिपी पड़ी हैं । ध्यान, जप, सत्संग, सत्कर्म के द्वारा उसकी उन योग्यताओं के कुछ - कुछ अंश विकसित होते हैं और जितने अंश अधिक विकसित होते हैं उतना ही मनुष्य निःदुःख होता है, निरहंकार होता है तथा निर्द्वन्द रहता है । जैसे बार-बार शराब पीने से, बार-बार संभोग आदि करने से बल तथा बुद्धि मारी जाती है, ऐसे ही नियम, संयम और व्रत साधना करने से बुद्धि में विलक्षण लक्षण प्रकट होते हैं। बुद्धि की परमात्मा में विश्रांति सभी बलों से श्रेष्ठ बल को अपने में भरती है। बुद्धि थोड़ी भी परमात्मा में प्रतिष्ठित होने से सुख के लिए दर-दर भटकना नहीं पड़ेगा, विषय-विकारों में गिरना नहीं पड़ेगा ।

आध्यात्मिक उन्नति के अथवा बुद्धिबल के विकास के कुछ लक्षण हैं : पहला, संसार के ऐश-आराम, प्रलोभन होने के बाद भी मनुष्य उनमें आसक्त न हो तो समझना कि बुद्धि का बल विकसित हो रहा है । दूसरा, भगवान के प्रति, सत्शास्त्रों और सत्पुरुषों के प्रति प्रीति का विकास हो तो समझो बुद्धि ठीक विकसित होने के रास्ते है। तीसरा लक्षण है, धीरता-वीरता आयेगी, अति भावुकता नहीं होगी। अति भुखमरी अथवा अति आहार नहीं करेगा । चौथा लक्षण है, मानसिक अशांति नहीं रहेगी। पाँचवाँ लक्षण है, गहरे ध्यान में कभी-कभी कुछ दिव्य अनुभूतियाँ होने लगेंगी, चित्त में और समता बढ़ती जायेगी । विचार साकार होने लगेंगे, संकल्प फलने लगेंगे। अपनी इच्छापूर्ति हो जाय और दूसरे के ऊपर कृपादृष्टि हो तो उसकी भी इच्छापूर्ति हो जाय- ऐसा इच्छापूर्ति का सामर्थ्य आ जायेगा । ईश्वर के बारे में, शास्त्र के बारे में, किसी घटना के बारे में संदेह हो तो शुद्ध हृदयवाले ध्यानस्थ होकर इसका समाधान पा लेते हैं । छठी बात, प्रार्थना में बैठोगे तो आपकी प्रार्थना इष्ट तक,

गुरु तक बिल्कुल पहुँची हुई आपको महसूस होगी। धारणाशक्ति बढ़ने से आपके शरीर में हल्कापन लगेगा। वाणी मधुर और आकर्षक हो जायेगी। चित्त शांत रहेगा। सुख-दुःख सपना है और चैतन्यस्वरूप, ब्रह्मस्वभाव अपना है ऐसा मानोगे। भविष्य की घटनाएँ आपके आगे प्रकट होने लगेंगी, व्यक्तित्व में निखार आयेगा तथा व्यक्तित्व का अहंकार विसर्जित होने लगेगा। तमाम सफलताओं का मूलमंत्र है बुद्धि का विकास !

पुण्यं प्रज्ञा वर्धयन्ति क्रियामाणं पुनः पुनः ।
पापं प्रज्ञा नश्यन्ति क्रियामाणं पुनः पुनः ॥

बार-बार पुण्यकर्म करने से प्रज्ञा (बुद्धि) का विकास होता है और बुद्धि विलक्षण लक्षणों से सम्पन्न होती है तथा बार-बार पाप करने से बुद्धि दब्बू हो जाती है, नष्ट हो जाती है। मनुष्य की बुद्धि जितनी ऊँची होती है उतना वह महान होता है और बुद्धि जितनी छोटी होती है उतना वह छोटा होता है।

बुद्धिबल बढ़ाने के लिए 'यजुर्वेद' (३२.१४) में एक मंत्र आता है :

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥

'हे मेधावी परमात्मा ! जिस मेधा-बुद्धि की प्रार्थना, उपासना और याचना हमारे देवगण, ऋषिगण तथा पितृगण सर्वदा से करते चले आये हैं वही मेधा, वही बुद्धि हमें प्रदान कीजिये।'

ऐसी प्रार्थना कर पहली उँगली अँगूठे के नीचे और तीन उँगलियाँ सीधी करके पालथी मारकर बैठ जाओ। ओंकार का गुंजन करो। ललाट पर तिलक करने की जगह पर थोड़ी देर अनामिक उँगली घिसो। वहाँ ॐकार या भगवान को निहारने की भावना करो। बायें नथुने से गहरा श्वास लो, भगवन्नाम का सुमिरन करो और दायें नथुने से श्वास छोड़ दो। अब दायें से गहरा श्वास लो, थोड़ा रोक रखो और जप करो : हरि ॐ... हरि ॐ... शांति। जो पाप-ताप हर ले वह मेरा हरि है। 'ॐ' मतलब अखिल ब्रह्माण्ड का समर्थ प्रभु ! उसमें मेरी बुद्धि शांत होकर सर्वगुण-सम्पन्न होगी। हे प्रभु ! हमारी बुद्धि ऋषि, मुनि, पितर, देव जैसा चाहते हैं वैसी बने। हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ...। मन में ऐसा चिंतन करो। बायें नथुने से श्वास बाहर निकाल दो। ऐसे एक-दो प्राणायाम और करो। फिर थोड़ा समय शांत बैठे रहो।

बुद्धिबल बढ़ाने का दूसरा उपाय है भगवान के श्रीविग्रह या अपने शरीर के सात केन्द्रों में से किसी केन्द्र पर ध्यान करो अथवा भगवान या गुरु के चित्र के सामने दीया जलाकर थोड़ी देर बैठो। उनके और अपने नेत्र एक रेखा में हों। फिर १० से १५ प्राणायाम करके दीर्घ प्रणव का जप करो और शांत होते जाओ। इस प्रकार ३०-४० मिनट तक जप करो। यह प्रयोग ४० दिन तक सुबह-शाम करने से आपकी बुद्धि में, आरोग्य में, मानसिक चिंतन में खूब-खूब कल्याणकारी परिवर्तन आयेगा।

तीसरा उपाय है इष्ट और गुरु के अतिरिक्त दूसरे किसीको अहोभाव से न देखो; और सब संसार शोषण करनेवाला है। ईश्वर के सिवाय सब बदलनेवाला है। अगर इस रास्ते चलते हो तो दिव्य शांति और आध्यात्मिक वैभव के धनी बनते हो। नहीं तो **सकल सृष्टि को राजा दुखिया।** सारी सृष्टि का राज्य मिल जाय फिर भी दुःखों का अंत नहीं होता।

परमात्मा में प्रतिष्ठित होने से, ऊँचा नजरिया मिलने से परमात्म-सुख, परमात्म-प्रेरणा, परमात्म-ज्ञान और परमात्म-सामर्थ्य की जागृति हो जाती है। सारे विश्व में कई प्रकार के बल और कई प्रकार के सुख-सुविधा के साधन हैं लेकिन जिस साधन से बुद्धि परमात्मा में विश्रांति पाकर परमात्म-सुख पा ले। उस साधन और सुख-सामर्थ्य के आगे सब छोटे हो जाते हैं ! □

योग्यताओं के सदुपयोग से तीनों माँगों की पूर्ति

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

मानव की माँगें तीन हैं। **एक माँग है विश्राम।** जैसे शरीर की माँग है नींद, ऐसे ही जीवात्मा की माँग है निश्चिन्त जीवन, विश्राम। अगर ठीक-से विश्राम मिल जाय तो गजब का सामर्थ्य आ जायेगा। कर्म-विश्रांति का योग हो जाय तो कर्ता का कर्म करने का सामर्थ्य बढ़ जायेगा। भक्ति के साथ विश्रांति का योग हो जाय तो भी सामर्थ्य बढ़ जायेगा। ज्ञान के साथ विश्राम का योग हो जाय तो बस, समझो ज्ञान सफल हो गया।

विश्रांति के, आध्यात्मिक खजाने के बिना कोई भी कर्म पूर्ण सुख नहीं दे सकता। आध्यात्मिकता के बिना सच्ची उन्नति और सच्चा सुख संभव ही नहीं है; भुलावे में भले पड़ जाय कि 'मेरी चार गाड़ियाँ हैं' लेकिन दुःख नहीं मिटेगा।

दूसरी माँग है स्वाधीनता। पराधीनता तो पशु-पक्षी भी पसंद नहीं करते। मैंने कई बार देखा, गिलहरी के बच्चे जरा-से टुकड़े के लिए छटपटा रहे थे। उनको पिंजरे में डालकर खिलाने का प्रयास किया तो उन्होंने नहीं खाया। पहले बाहर निकालो बाबा ! ऐसे ही पिंजरे में डाले हुए पक्षी जब तक लघुता-ग्रंथि में नहीं बँधते, तब तक स्वतंत्रता के लिए छटपटाते हैं। वास्तव में जीव का असली स्वरूप परम स्वतंत्र है, इसलिए वह जिस शरीर में आता है उसमें उसकी स्वतंत्रता की छटपटाहट बनी रहती है।

मानव की **तीसरी माँग है प्रेम।** कइयों की फरियाद रहती है : 'मेरी पत्नी, माँ-बाप, मित्र अमुक-अमुक मुझे प्रेम नहीं करते।' दूसरों से प्रेम की अपेक्षा करोगे तो तुम रोते रहोगे। तुम अपनी तरफ से प्रीतिपूर्वक व्यवहार करो। प्रीतिपूर्वक व्यवहार का फल यह होगा कि तुम प्रेमास्पद प्रभु के सुख का आस्वादन कर लोगे। जरूरी नहीं है कि कोई भी काम करो तो उसका संसारी फल हो। माँ-बाप की सेवा करो। विद्यार्थी विद्यालय जाने से पहले माँ को, पिताजी को या भाई को थोड़ी मदद करनी है तो कर ले। अपनेको क्या मिलेगा यह मत सोचे। यह हो गया निष्काम कर्तव्य निभाना, जो तुमको विश्रांति में मदद देगा।

कुछ लोग सोचते हैं, 'भगवन्नाम जपेंगे तो क्या फायदा होगा ?' अरे, इतनी बनियागिरी क्यों करते हो ? ऐसे ही जपो-भगवान की प्रीति के लिए। गरीब-गुरबे की सहायता या सेवा करो परंतु दिखाने के लिए नहीं, वाहवाही के लिए नहीं, ऐसे ही-सहज में। इससे अंतरात्मा का स्वाधीन सुख मिलेगा, परमात्मप्रीति का प्रसाद मिलेगा।

आध्यात्मिक उन्नति के बिना सुख संभव नहीं। भौतिक उन्नति हर्ष देगी, सुविधा देगी किंतु सुख नहीं दे सकती। पैसों के बल से पकवान तो मिलेंगे किंतु भूख कुदरती होती है। पैसों के बल से सोफा, पलंगसहित परफ्यूम छाँटे हुए कमरे मिलेंगे लेकिन नींद तो परमात्मशक्ति से मिलती है। पैसों के बल से प्रेमिका मिल जायेगी परंतु प्रीतिपूर्वक भोजन खिलानेवाली पत्नी नहीं मिलेगी।

मानव की तीन माँगों की पूर्ति के लिए उसमें दो विलक्षण योग्यताएँ हैं। एक है देखने की योग्यता। केवल नेत्रों से नहीं देखा जाता, अन्य इन्द्रियों से भी देखा जाता है। देखकर, सूँघकर, चखकर - इन्द्रियों के द्वारा जगत को भीतर भरने

की योग्यता मानव में है । दूसरी है विचारने की, चिंतन की योग्यता । मनुष्य इनका सदुपयोग कर ले तो उसके सारे दुःख सदा के लिए मिट जायेंगे और उसे परम सुख की प्राप्ति सहज में हो जायेगी क्योंकि परम सुख हमारा स्वभाव है । 'गाड़ी नहीं है तो मैं दुःखी हूँ...' - गाड़ी मिल गयी तब भी हम परम सुखी नहीं होते हैं । गाड़ीवाले भी दुःखी रहते हैं । बच्चा नहीं है तो दुःखी हैं । बच्चा हो गया तो दुःख मिटा ? नहीं अब और कोई दुःख है । सत्ता नहीं है तो हम दुःखी हैं । सत्ता मिल गयी तो भी हम निर्दुःख नहीं होते हैं । जब तक परम सुख नहीं मिलता, हम निर्दुःख नहीं होते क्योंकि हम वास्तव में अमर हैं, शाश्वत हैं; हमको अमर, शाश्वत सुख जब तक नहीं मिलेगा तब तक मरनेवाली सुविधाएँ हमको संतोष, विश्रांति, प्रीति नहीं दे सकतीं ।

भारतीय दर्शन में और पाश्चात्य दर्शन में जमीन-आसमान का अंतर है । भारतीय दर्शन कहता है कि 'इन्द्रियों से जो कुछ सुख अंदर भरोगे, सुविधा भरोगे उसमें तुम खोखले और पराधीन होते जाओगे । उसका औषधिवत् उपयोग करो और अंदर का सुख बाहर के व्यवहार में छलकाओ ।' पाश्चात्य जगत की सारी छानबीन और खोज - 'ऐसा हो जाय तो सुखी, ऐसा पा लें तो सुखी, ऐसा बना लें तो सुखी...' इस पर केन्द्रित है । किसीसे मिलकर, किसीको तलाक देकर सुखी होने के चक्कर में अंत में वे बेचारे दुःखी होते चले जाते हैं । वहाँ क्रिसमस के दिनों में अधिक-से-अधिक, रिकार्डतोड़ आत्महत्याएँ होती हैं जबकि यहाँ हमलोग दिवाली के दिनों में इतनी आत्महत्याओं की खबरें नहीं सुनते हैं । 'इसके पास इतना है और मैं उतना जुटा नहीं सका... इसकी मिसेस ऐसी और मेरी ऐसी... इसका मिस्टर ऐसा और मेरा ऐसा...' - इस प्रकार वहाँ के लोग बाहर के आसरे से प्रीति, विश्रांति और स्वतंत्रता चाहते हैं; इसीसे आत्महत्या करके मरने के कगार पर आ जाते हैं लेकिन यहाँ शबरी भीलन, रविदास चमार, सदना कसाई, गोरा कुम्हार- सभीके जीवन में आत्मतृप्ति छलकती है । शुकदेवजी महाराज की कौपीन का ठिकाना नहीं और इतने ऊँचे आत्मसुख, विश्रांति के धनी कि राजा परीक्षित सोने के थाल में उनके चरण धोता है तो भी कोई विशेष हर्ष नहीं और उसके पहले- वहाँ आते समय लोग मजाक उड़ाते हैं तो उन्हें दुःख नहीं होता । उनके हृदय में आत्मतृप्ति है कि ये तो आने-जानेवाले आँधी-तूफान हैं । भगवान कहते हैं :

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

'हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख या दुःख को भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है ।' **(गीता : ६.३२)**

जीवन में कई सफलताओं और विफलताओं की खाइयाँ आयेंगी किंतु उन सबको पार करना है, उनमें कहीं रुकना नहीं है । तुम घर से यहाँ आये तो कई उतार-चढ़ाव आये, कोई अच्छी सड़क आयी, कोई खराब सड़क आयी; तुम कहीं खराब सड़क के लिए रोने बैठ जाते या अच्छी सड़क पर पिकनिक मनाने बैठ जाते तो यहाँ नहीं पहुँचते । अच्छा-बुरा, सफलता-विफलता यह संसार का सपना है, उसको देखनेवाला चैतन्य परमात्मा अपना है । उसमें शांति पाने का अभ्यास करो, उससे प्रीति करो ।

देखने की और सोचने की - दोनों शक्तियों का सदुपयोग करो । कुछ भी सुनायी पड़ा और तुम झूमने लग गये । नहीं-नहीं... किसी भी चीज का विज्ञापन देखा और तुमने वह खरीद ली । ना-ना... विचार की शक्ति जगाओ और अच्छा विचार आये तो यह विवेक जगा दो कि 'अच्छा विचार किसकी कृपा से आया ? चैतन्य प्रभु की ।' बुरा विचार तो वासना से आता है ।

अच्छा कर्म है तो कर लो और बुरा कर्म है तो बोलो : 'अभी जरा ठहरो, बाद में देखा जायेगा।' बुरे विचारों को महत्त्व न दो, बुरी चीजों को आँख-कान से देखो-सुनो नहीं। अपनेको बचाओ। यह तुम्हारे हाथ की बात है।

होमर पढ़े-लिखे नहीं थे और सुकरात ने तो पेन व स्लेट भी हाथ में नहीं पकड़ी थी लेकिन वे कितने उच्च विचारक हो गये ! संत कबीरजी कितने ऊँचे हो गये ! तुम थोड़ी विश्रांति पाकर कार्य करते हो तो उसमें आगे बढ़ जाओगे।

सात दिन एकांत मौन में रहो। कुछ भी नहीं करो। केवल 'हरि ॐऽऽऽ...' ऐसा दीर्घ जप करके हर उच्चारण के बाद अंतर में आराम करो बस। इससे ज्ञानतंतु सक्रिय हो जायेंगे। मैंने ४० दिन ऐसी विश्रांतिवाली साधना की थी। दूध पर रहता था। थोड़ा जप-ध्यान किया और शांत... उच्चारण किया फिर शांत...। आत्मा तो स्वतः है। भगवान को लाना नहीं है, भगवान के पास जाना नहीं है, बस भगवान में थोड़ी शांति पानी है। भगवान की प्रीति व भगवद्-तत्त्व के ज्ञान से सारी सफलताएँ तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेंगी। तुम दूसरों को भी चमकाने में सफल हो जाओगे। बापूजी की कृपा से ऐसा हो गया, वैसा हो गया... हजारों लोग अपने-अपने अनुभव बोलते हैं। वही खजाना तुम्हारे पास भी है।

इनसान की बदबख्ती अंदाज से बाहर है।
कमबख्त खुदा होकर बंदा नजर आता है॥

तुम्हारे चित्त में केवल काम या बुराई नहीं है, सज्जनता भी छुपी है। उसको विकसित करो। तुम्हारे चित्त में 'सत्'ता, चेतनता और आनंद भी छुपा है। उसको उभारो। तुम धरती पर केवल बोझा ढोनेवाले पिट्ठू बनकर नहीं आये हो। भगवान ने तुमको अपना गुलाम बनाने के लिए जन्म नहीं दिया है। भगवान ने तो तुमको अपने भगवद्-स्वभाव में जगने के लिए जन्म दिया है और श्रद्धा दी, सत्संग तक पहुँचाया - इस भगवान की कृपा का फायदा उठाओ न ! क्या करें, जमाना खराब है। क्या करें, गुरु नहीं मिलते। क्या करें, मेरी पत्नी, माँ-बाप, मेरे कुटुंबी, साथी ऐसा कहते हैं- इस प्रकार की फरियाद पकड़कर परेशान मत होओ। जैसी भी अवस्था है, अपने चिंतन और दर्शन को ऊँचा कर दो। बेटा अच्छा है तो ईश्वर की कृपा है और आज्ञा नहीं मानता है तो 'भगवान मुझे वैराग्य दिला रहे हैं। वाह प्रभु ! आपकी कृपा है।'- ऐसा चिंतन करो। कोई सुंदर बालक, कन्या या महिला दिखे तो ऐसा सोचो कि 'भगवान तू कैसा है कि हाड़-मांस, मल-मूत्र से भरे शरीर में भी सौन्दर्य का आभास होता है ! यह तेरी ही चेतना का प्रताप है।' इस प्रकार उस प्रभु को याद करो। सुंदर या सुंदरी को देखकर विकारों में गिरना-गिराना यह विचारों का प्रदूषण है। दर्शन को शुद्ध कर दो तो तीनों चीजें तुम्हारे हाथ में आ जायेंगी; विश्रांति, प्रीति और स्वाधीनता मिल जायेगी।

दुनिया का ऐसा कोई सुख नहीं जो पराधीनता के बिना, मलिनता के साथ तादात्म्य किये बिना मिल जाय। पति-पत्नी का सुख भी मलिन अंगों के साथ एकता करोगे, पराधीन बनोगे तभी थोड़ा महसूस होगा। हाड़-मांस, मल-मूत्रवाले शरीर में जब तक तुम अपनी प्रीति उँड़ेलोगे नहीं, तब तक वह तुमको सुख का आभास नहीं देगा। ऐसे ही परफ्यूम आदि केमिकल होते हैं, तुम उनको महत्त्व देते हो और नाक के साथ जुड़कर प्रीति करते हो तभी कुछ सुख का आभास होता है। तुम जिस पर अपनी प्रीति की किरण भेजते हो वह वस्तु प्यारी हो जाती है। इसलिए मलिनता से तादात्म्य (एकता) कर सुख पाने का यत्न न करो, अपने आत्मचैतन्य से प्रीति करो।

सात्त्विक कपड़े पहनो, सात्त्विक भोजन करो,

सोते समय योगनिद्रा में विश्रांति पाओ । ज्ञान, भक्ति, आत्मविश्रांति बढ़े ऐसे सद्ग्रंथ पढ़ो । ईश्वरप्राप्ति के लिए राजा परीक्षित को ७ दिन बहुत हो गये और मुझे ४० दिन बहुत हो गये तो तुम्हारे लिए एक साल कम है क्या ? ईश्वरीय सुख पाने का उद्देश्य रखो । अपनी दोनों योग्यताओं का सदुपयोग करके तीनों माँगों की पूर्ति करो । ❑

साधकों के लिए

भगवान जीव के नित्य साथी हैं

जब कभी भक्त के मन में किसी प्रकार के अभिमान की छाया आ जाती है, तब उसका नाश करने के लिए भगवान उसके सामने से छिप जाया करते हैं । रासलीला करते समय जब गोपियों के मन में यह बात आयी कि 'अब तो श्यामसुंदर हमारे अधीन हो गये, हम जैसा कहती हैं ये वैसा ही करते हैं', तभी भगवान श्रीकृष्ण अंतर्धान हो गये । जिसके मन में अभिमान नहीं आया था, उसको अपने साथ ले गये । आगे चलकर जब उसके मन में भी अभिमान आया और वह कहने लगी कि 'मुझसे अब चला नहीं जाता, मुझे कंधे पर उठा लीजिये ।' तब उसको भी वहीं छोड़कर अंतर्धान हो गये । पीछे से जब श्यामसुंदर को खोजनेवाली अन्य गोपियाँ उससे मिलीं और वहाँ भी श्यामसुंदर नहीं मिले, तब वे सब श्यामसुंदर के विरह से व्याकुल होकर उनको वन में सब ओर खोजने लगीं । लता-पत्ता, पशु-पक्षी आदि हरेक प्राणी से पूछने लगीं कि 'तुमने श्यामसुंदर को देखा होगा । वे किधर गये ?' इतने पर भी जब श्यामसुंदर नहीं मिले, तब जहाँ से लीला आरम्भ हुई थी, वहीं आकर विरह-व्याकुलता से उनमें तन्मय हो गयीं और उन्हींकी लीला का अभिनय करने लगीं । जब व्याकुलता के दुःख से उनका अभिमान गल गया, तब श्यामसुंदर वहीं प्रकट हो गये । वे जब अंतर्धान हो गये थे, तब भी वहीं थे । कहीं गये नहीं थे पर गोपियाँ उनको जान नहीं पायीं । प्रकट होने पर जब गोपियाँ उन्हें उलाहना देने लगीं, तब उन्होंने यही कहा कि 'मेरी प्यारी सखियो ! मैं तो सदैव तुम्हारे ही पास था । कहीं दूर नहीं गया था । मैं तो तुम्हारे प्रेमरस की वृद्धि के लिए ही छिपा था इत्यादि ।' अतः भक्त को, साधक को कभी किसी प्रकार का भी अभिमान

नहीं करना चाहिए ।

भगवान जो जगत की रचना करते हैं, उसमें भगवान का जीवों को नाना भाँति से रस-प्रदान करना और स्वयं उनके प्रेम-रस का आस्वादन करना - यही उद्देश्य है । विचारशील साधक, भक्त का चित्त शुद्ध होने पर उसको बोध प्राप्त होता है और उसके बाद प्रेम की प्राप्ति होती है । कोई कहे कि बोध के बाद प्रेम की प्राप्ति कैसी ? उसका तो शरीर-मन आदि से कोई संबंध ही नहीं रहता । फिर प्रेम कौन, किससे और कैसे करता है ? इसका उत्तर यही है कि प्रेमी का मन, इन्द्रियाँ आदि कोई भी भौतिक नहीं रहते । उसके मन-बुद्धि आदि सभी दिव्य और चिन्मय होते हैं क्योंकि भगवान स्वयं जिस चिन्मय प्रेम की धातु से बने हैं, उसीसे उनके प्रेमी, उनका दिव्य धाम और सब कुछ बने हैं । उनमें कोई भी भौतिक वस्तु नहीं है । इसलिए बोध के बाद प्रेम होना असंगत नहीं है । इसीमें तो सच्चिदानंदघन पूर्णब्रह्म लीलामय परमेश्वर के सगुण-साकार रूप की सार्थकता है । प्रेम के अतिरिक्त सगुण ब्रह्म के होने में कोई कारण ही नहीं है ।

प्रेम अनंत है, उसका कभी अंत नहीं होता क्योंकि प्रेमी और प्रेम की लालसा एवं प्रियतम सभी नित्य व असीम हैं, अतः उनके मिलन में और वियोग में सदैव आकर्षण रहता है तथा नित्य नया प्रेम बना रहता है ।

भगवान जीव के नित्य साथी हैं, कभी उससे अलग नहीं होते तथापि प्राणी उनको जानता नहीं, भूल गया है । यह जीव जबसे भगवान को भूल गया है, तबसे अपनेको उनसे अलग मानकर दुःखी हो रहा है ।

यह भूल मिटाकर जो अपने प्रेमास्पद के संबंध का स्मरण होता है, यही वास्तविक स्मरण है । अतः नाम-जप आदि साधन करते समय भी साधक को यह नहीं भूलना चाहिए कि 'यह नाम मेरे प्रियतम का है ।'

चित्तशुद्धि के लिए साधक को चाहिए कि या तो विकल्परहित विश्वास करके यह माने कि 'मेरी और प्रभु की जातीय एकता है । अतः वे ही मेरे हैं, अन्य कोई मेरा नहीं है ।' और यह मानकर एकमात्र प्रेमास्पद प्रभु के प्रेम की लालसा प्रकट करे अथवा शरीर तथा संसार में माना हुआ जो 'मैं और मेरा' पन है उसे विचार के द्वारा दूर करके सच्चिदानंदघन ब्रह्म से अपने स्वरूप की एकता का बोध प्राप्त करे । □

उत्तम संतानप्राप्ति हेतु

मानव को शुभ योगों का लाभ लेना चाहिए व अशुभ योगों से बचना चाहिए। दिसम्बर २००८ से गुरु-राहु का 'चाण्डाल योग' शुरू हो रहा है, इसलिए १ मार्च २००८ से २० अप्रैल २००९ तक गर्भ (प्रेग्नॅन्सि) न रहे इसका ध्यान रखें । इस कालखण्ड के बीच में २० अगस्त २००८ से ५ अक्टूबर २००८ तक का समय गर्भधारण (प्रेग्नॅन्सि) के लिए अच्छा है । इस काल में गर्भधारण का प्रयत्न कर सकते हैं । २० अप्रैल २००९ के बाद का समय भी गर्भधारण के लिए अच्छा है । २० अगस्त २००९ से २० जनवरी २०१० तक का काल गर्भधारण हेतु अति उत्तम है ।

जिसकी जन्मकुण्डली में तीव्र चाण्डाल योग हो व अन्य शुभ ग्रहों की स्थिति ठीक न हो तो उसके अशांत व शारीरिक-मानसिक पीड़ा से ग्रस्त होने की संभावना रहती है । फिर भी यदि अनुचित समय में गर्भ रह जाय तो गर्भपात न करके आनेवाले बालक के कल्याण के लिए प्रार्थना, पूजा, रामायण आदि का पाठ, जप, अनुष्ठान करें ।

अपने यहाँ स्वस्थ, तंदुरुस्त और पुण्यात्मा बालक का जन्म हो इस हेतु सभी दम्पतियों को जप, अनुष्ठान, रामायण एवं श्रीगुरुगीता का पाठ करके गर्भाधान करना चाहिए।

शक्तिसंचार का दिव्य साधन : सम्प्रेषण

(अंक १८१ का शेष)

गुरु से सम्प्रेषण ग्रहण करने के बाद भिन्न-भिन्न शिष्यों की भावनाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट होती हैं। कई शिष्यों की प्रतिक्रिया अति अनुकूल होती है। वे गुरु से विशेष प्रेम करने लगते हैं, अपनेको उनके श्रीचरणों में अर्पित कर देते हैं तथा निरंतर उनके ही सुमिरन में निमग्न रहने लगते हैं। ये प्रथम श्रेणी के शिष्य हैं। जो शिष्य थोड़ी-सी अनुभूति में ही हर्षित होकर अपनेको बहुत बड़ी उपलब्धि हुई है ऐसा समझ लेते हैं और साधन-भजन में शिथिल पड़ जाते हैं वे द्वितीय श्रेणी में आते हैं। कृपालु गुरुदेव अपने सत्संग-मार्गदर्शन द्वारा उनका यह 'तुष्टि' नामक दोष दूर करते हैं परंतु जो शिष्य गुरु के मार्गदर्शन का अनादर करते हैं एवं थोड़ा-सा सम्प्रेषण झेला-न झेला, अपनेको बड़ा मानने लगते हैं और स्वघोषित उपदेशक बनकर दुनिया को सुधारने में लग जाते हैं, वे खुद को ही ठगते हैं। ये तृतीय श्रेणी के शिष्य हैं। इन्हें प्राप्त हुई सम्प्रेषण शक्ति जनसंपर्क के कारण नष्ट हो जाती है। अतः शिष्य को सर्वप्रथम अपने चित्तरूपी पात्र को स्वच्छ एवं पवित्र बनाना चाहिए।

गुरु गुलाब के एक सुंदर पौधे के समान हैं तो शिष्य एक खिलता हुआ गुलाब। पौधे ने रस सींच रखा है इसलिए फूल खिला है, ऐसे ही गुरु ने ब्रह्मरस सींच रखा है इसलिए शिष्यरूपी गुलाब खिला है।

जैसे-जैसे शिष्य सम्प्रेषण से पोषित होता जाता है, वैसे-वैसे गुरु-शिष्य के बीच भौगोलिक दूरी होने पर भी मानसिक दूरी नहीं रहती, भावनात्मक दूरी नहीं रहती, भौतिक दूरी नहीं रहती। जब भौतिक दूरी मिटने लगती है तो फिर तात्त्विक दूरी भी मिट जाती है।

हनुमानप्रसादजी पोद्दार ने एक साधु से कहा : ''कोई सत्पात्र है तो हम उसको अभी-अभी अलख का अनुभव करा दें।''

साधु बोले : ''महाराज ! कैसे ? सत्पात्र की पहचान क्या ?''

''अत्यन्त श्रद्धा हो, संयमी जीवन हो तो संकल्प करके उसको अभी अनुभव करा दें परमात्मा का।''

''अत्यन्त श्रद्धा माने क्या ?''

''मैं बकरी दिखाऊँ और उसको बोलूँ यह गाय है तो उसको गाय दिखनी चाहिए, उसमें ऐसी श्रद्धा हो। दिन हो और मैं कहूँ रात है तो बोले, 'हाँ, रात है।' हृदयपूर्वक मानने लग जाय। हमारे भाव के साथ उसका भाव उसी समय एक हो जाय, हमारे चित्त के साथ उसका चित्त एकाकार हो जाय तो फिर हमारे अनुभव के साथ उसका अनुभव एकाकार हो जायेगा।''

इसीलिए भगवान शिवजी कहते हैं कि गुरु की बात सच्ची हो या झूठी शिष्य को सत्य माननी चाहिए। झूठी बात काहे को बोलेंगे गुरुजी ? तुम जिस अवस्था में हो उसके अनुसार तुमको भले वह झूठ लगे किंतु गुरुजी जिस ब्राह्मी स्थिति में हैं उस दृष्टि से तो उनकी बात सच्ची ही है।

शिष्य अपनी साधना के क्रम में बहुत लम्बे समय तक अपने भौतिक शरीर का उपयोग करता है किंतु यदि वह गुरुजी के सिद्धांतों के अनुसार अपनेको ढाल दे, उनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिला दे तो वह गुरु के ज्ञान की सर्वोत्तम

अभिव्यक्ति बन सकता है। गुरुकृपा से शिष्यरूपी फूल पुष्पित होता है, उसे अलौकिक, अतीन्द्रिय अनुभूति प्राप्त होती है।

जब गुरु और शिष्य के बीच संबंध स्थापित होता है तो शिष्य से सिर्फ इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह अपने मन को पूर्व की दूषित मान्यताओं, दुराग्रहों, अज्ञानता के संस्कारों से मुक्त कर दे। जैसे गुरु अपने हाथ का उपयोग कर सकते हैं, ऐसे तुम्हारे मन का उपयोग कर लें - यह हो गयी तुम्हारे मन की मुक्तता। जैसे नाव को लंगर से मुक्त कर दो तो फिर यात्रा करेगी। नहीं तो लंगर लगा है व नाव चला रहे हैं तो वहीं हिलती रहती है, चलती नहीं है। ऐसे ही अपने मन को ऐसा बनने का, वैसा बनने का, पद-प्रतिष्ठा या वासनापूर्ति का लंगर लगाकर फिर गुरु के पास रहते हैं तो मन हिलता रहता है, यात्रा रुक जाती है। रुचि तो बंधनकर्ता है। हम अपनी रुचि के अनुसार करेंगे तो रुचि से पार कैसे होंगे ? गुरु वे हैं जो तुमको किसी रुचि की गुलामी में फँसने न दें। अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं, गुरु-भगवान की तरफ अपने मन की वृत्ति मोड़ दो।

मेरी हो सो जल जाय, प्रभु की हो सो रह जाय।

अपनी इच्छापूर्ति की चाह रखना मतलब नाव में लंगर लगाना है। भक्त है तो भगवान को, शिष्य है तो गुरु को कह दे : '**जो तुधु भावै साई भली कार। (जपुजी)** जो तुमको अच्छा लगे वही मेरे लिए भला है। तेरी मर्जी पूरन हो।' तो उसका मन अच्छी यात्रा करने लगेगा।

मन सदैव या तो इन्द्रियगत, मानसिक व भावनात्मक बातों में व्यस्त रहता है या गहनतर स्तरों में संलग्न रहता है और हम प्रायः यह भी नहीं जान पाते हैं कि हमारे मन को कौन नियंत्रित कर रहा है ? भूत, वर्तमान व भविष्य के प्रत्येक विचार तथा किसी वस्तु या व्यक्ति से अच्छे-बुरे प्रत्येक संपर्क को मन से अलग किया जाना चाहिए। हमारी सजगता पर इनमें से किसी भी चीज का नियंत्रण नहीं रहना चाहिए। जब मन इन उलझनों से मुक्त होता है तो वह एक अनुभूति, प्रकाश या दिव्य दृष्टि के रूप में एक अति महान शक्ति से युक्त होकर प्रकट होता है।

शिष्य अज्ञानता की अवस्था से गुजर रहा है। वह एक जिज्ञासु है और प्रकाश की खोज कर रहा है। इसलिए वह गुरु की शरण लेता है और गुरु क्रमशः उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को रूपांतरित कर देते हैं। जैसे एक दिन में बीज वृक्ष नहीं होता, ऐसे ही एक दिन में जीव साक्षात्कारी नहीं होता, शनैः-शनैः रूपान्तरित होता है। गुरुदेव का सान्निध्य पाने से पहले कैसे थे, कितना जानते थे, और अभी ? सत्संग नहीं सुना था तब कैसी सूझबूझ थी और सत्संग सुनने के बाद कैसी सूझबूझ बन गयी ! फिर धीरे-धीरे सत्संग में आते रहे तब कैसा था ज्ञान, समझ और शांति ? उस समय तो लगता था कि बहुत है लेकिन अब ? अब तो लगता है कि उससे भी अधिक कुछ और भी है। तो शनैः-शनैः फर्क पड़ता है।

परमानंद को अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ, समस्त साधनाओं का एकमात्र लक्ष्य ! शरीर, मकान, पैसा - ये सभी साध्यप्राप्ति के साधन हैं, स्वयं में साध्य नहीं हैं। ऐसा नहीं कि अपने आत्मा की सत्ता इन्हींमें नष्ट करके इनमें बँध मरो। मकान शरीर की रक्षा के लिए है और शरीर है परमात्मा की यात्रा के लिए। ऐसे ही पत्नी, पति, पुत्र, परिवार- ये सब भी साधन हैं। इनमें ममता करके फँस मरने के लिए ये नहीं हैं। साधनों को बढ़ाते-बढ़ाते अपना लक्ष्य न भुला दो। तपेला माँजते ही मत बैठो। उसमें खीर बनाओ, खाओ और अपनी भूख मिटाओ। ऐसे ही सेवा-परोपकार से चित्त को शुद्ध करो, फिर सुमिरन-ध्यान की खीर बनाओ और सुख से खाओ, मुक्त हो जाओ ! □

निर्दोष व समूल रोगनाशक दैवी चिकित्सा

रोगों का नाश करनेवाली चिकित्सा तीन प्रकार की होती है -

(१) मानवी चिकित्सा :

इसमें आहार-विहार व निर्दोष औषधि-द्रव्यों का युक्तिपूर्वक प्रयोग किया जाता है ।

(२) राक्षसी चिकित्सा :

इसमें शस्त्रकर्म के द्वारा शारीरिक अवयवों का छेदन-भेदन कर अथवा प्राणियों की हत्या कर उनसे निर्मित औषधियों से चिकित्सा की जाती है ।

(३) दैवी चिकित्सा :

इसमें मंत्र, होम-हवन, उपवास, शुभकर्म, प्रायश्चित्त, तीर्थाटन, ईश्वर व गुरुदेव की आराधना से रोग दूर किये जाते हैं ।

इन चिकित्सा पद्धतियों में राक्षसी चिकित्सा हीन व दैवी चिकित्सा सर्वश्रेष्ठ है । दुःसाध्य व्याधियों में जहाँ बहुमूल्य औषधियाँ व शस्त्रकर्म भी हार जाते हैं वहाँ दैवी चिकित्सा अपना अद्भुत प्रभाव दिखाती है । यह तन के साथ मन की भी शुद्धि व आत्मोन्नति करानेवाली है । आयुर्वेद के श्रेष्ठ आचार्यों ने भी दैवी चिकित्सा का अनुमोदन किया है ।

'चरक संहिता' के चिकित्सास्थान में ज्वर की चिकित्सा का विस्तृत वर्णन करने के बाद अंत में श्री चरकाचार्यजी ने कहा है :

विष्णुं स्तुवन्नामसहस्त्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति ।

भगवान विष्णु की सहस्रनाम से स्तुति करने से अर्थात् विष्णुसहस्रनाम का पाठ करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं । पाठ रुग्ण स्वयं अथवा उसके कुटुंबी करें ।

वाग्भटाचार्यजी ने कुष्ठ रोगों पर अनेक औषधि-प्रयोग बताने के पश्चात् कहा है कि 'व्रत, गुरुसेवा तथा शिवजी, कार्तिकेय स्वामी व सूर्य भगवान की आराधना से कुष्ठ रोग दूर हो जाते हैं । अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ भी धीरे-धीरे इस दैवी चिकित्सा की ओर आकर्षित होने लगी हैं । अमेरिका में एलोपैथी के विशेषज्ञ डॉ. हर्बट बेन्सन ने एलोपैथी को छोड़कर निर्दोष दैवी चिकित्सा की ओर विदेशियों का ध्यान आकर्षित किया है जिसका मूल आधार भारतीय मंत्रविज्ञान है ।

दैवी चिकित्सा में मंत्र-चिकित्सा को अग्रिम स्थान दिया गया है । मंत्र अनादि हैं । इन्हें ऋषियों ने ध्यान की गहराइयों में खोजा है । प्रत्येक मंत्र का शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है । जैसे-

(१) 'ऐं' बीजमंत्र मस्तिष्क को प्रभावित करता है । इससे बुद्धि, धारणाशक्ति व स्मृति का आश्चर्यकारक विकास होता है । इसके विधिवत् जप से कोमा में गये हुए रुग्ण भी होश में आ जाते हैं । अनेक रुग्णों ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है ।

(२) 'खं' बीजमंत्र लीवर, हृदय व मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करता है । लीवर के रोगों में इस मंत्र की ५० माला करने से अवश्य ही लाभ मिलता है । 'हिपेटायटिस-बी' जैसे असाध्य माने गये रोग भी इस मंत्र के प्रभाव से ठीक होते हुए देखे गये हैं । ब्रोन्कायटिस में भी 'खं' मंत्र बहुत लाभ पहुँचाता है ।

(३) 'थं' मंत्र मासिक धर्म को सुनियंत्रित करता है । इससे अनियमित तथा अधिक मासिक स्राव में राहत मिलती है । महिलाएँ इन तकलीफों से

छुटकारा पाने के लिए हारमोन्स की जो गोलियाँ लेती हैं, वे होनेवाली संतान में विकृति तथा गर्भाशय के अनेक विकार उत्पन्न करती हैं। उनके लिए भगवान का प्रसाद है यह 'थं' बीजमंत्र।

(४) स्वास्थ्यप्राप्ति के लिए सिर पर हाथ रखकर निम्न मंत्र का १०८ बार उच्चारण करें।

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

'हे अच्युत! हे अनन्त! हे गोविन्द! - इस नामोच्चारणरूप औषध से तमाम रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ... सत्य कहता हूँ।'

(धन्वंतरि) (क्रमशः)

वसंत ऋतु में आहार-विहार

(वसंत ऋतु : १९ फरवरी से १८ अप्रैल)

इस ऋतु में भारी, चिकनाईवाले, खट्टे और मीठे पदार्थों का सेवन बंद कर के पचने में हल्के, रूखे, कड़वे, कसैले, तीखे पदार्थ जैसे लाई, भूने हुए चने, जौ, मूँग, मेथी, करेले, मूली, सहजन, सूरन, ताजी हल्दी, अदरक, काली मिर्च, सोंठ आदि का सेवन करना चाहिए।

चैत्र मास (२२ मार्च से २० अप्रैल) में १५ दिन अलोना (नमक के त्याग का) व्रत रखना खूब स्वास्थ्य-प्रदायक है।

इससे रक्त शुद्ध होकर हृदय, गुर्दे, यकृत (लीवर) व त्वचा के रोगों से रक्षा होती है।

प्रतिवर्ष अलोना व्रत रखनेवाले व्यक्ति अन्य लोगों की अपेक्षा स्वस्थ पाये गये हैं।

इस ऋतु में सुबह २ ग्राम हरड़ चूर्ण शहद में मिलाकर लें। नीम की १५-२० कोंपलें (नीम के कोमल पत्ते) २-३ काली मिर्च के साथ खूब चबा-चबाकर खायें। नीम के फूलों का १५-२० मि.ली. रस ७ से १५ दिन तक सुबह खाली पेट लें। इससे त्वचा-विकारों व मलेरिया से बचाव होगा। □

सर्वोपरि व परम हितकर...

एक बार देवर्षि नारदजी शुकदेवजी के निकट जा पहुँचे। नारदजी को सामने देख शुकदेवजी उनका सम्मान करने उठ खड़े हुए व उनका पूजन किया। नारदजी ने उनसे पूंछा : ''वत्स! तुम्हारी क्या इच्छा है ?''

शुकदेवजी ने कहा : ''भगवन्! इस मर्त्यलोक में मानव-जीवन के लिए सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ और परम हितकर उपदेश कौन-सा है ?''

नारदजी बोले : ''यही प्रश्न प्राचीनकाल में ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि तथा अन्यान्य महापुरुषों की एक महती सभा में किया गया था। इसके उत्तर में सभा के प्रधान व्याख्याता ब्रह्मर्षि सनत्कुमारजी ने कहा था : ''विद्या के समान संसार में कोई नेत्र नहीं है। सूर्य का प्रकाश भी इस विद्या-चक्षु के प्रकाश से कम है। सत्य-पालन के समान कोई तप नहीं है। राग के समान संसार में दुःख का अन्य कोई कारण नहीं है। राग ही सबसे बढ़कर दुःख देनेवाला है और त्याग के समान सुखदाता कोई नहीं है अर्थात् त्याग ही सबसे बढ़कर सुखप्रद है। वत्स! हिंसा, असत्य, छल, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुःखदायी पापकर्मों से बचना, निरंतर पुण्यप्रद कर्मों में निरत रहना, अपने-अपने वर्ण और आश्रम के धर्मानुकूल सदाचार का पालन करना ही अति श्रेष्ठ कल्याण का मार्ग है। मानव-शरीर को पाकर काम, क्रोध, लोभ आदि दुःखदायी विषयों में आसक्त होकर जो प्राणी धर्म के मार्ग से च्युत हो जाता है, उसकी बुद्धि मोह-जाल में फँसकर नष्ट हो जाती है। अतः वह दुःख पाता है और उन दुःखों से अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकता। क्योंकि विषयों का संग ही तो दुःख का लक्षण है।'' (क्रमशः) □

सं|स्था||स|मा|चा|र

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

पूज्यश्री के सत्संग की बहती गंगा का केन्द्रबिन्दु इस माह आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल रहा । २५ से २७ जनवरी तक हैदराबाद (आंध्र प्रदेश) में ज्ञानगंगा प्रवाहित हुई। सत्संग समारोह का प्रथम सत्र विद्यार्थियों के नाम रहा । विभिन्न विद्यालयों से आये हजारों विद्यार्थी पूज्य बापूजी के ओजपूर्ण अमृतवचनों से लाभान्वित हुए । आज जहाँ एक ओर पश्चिम के कुसंस्कारों एवं विकारी वातावरण का आक्रमण विद्यार्थियों पर हो रहा है, वहीं दूसरी ओर देश के इन भावी कर्णधारों के जीवन को सुसंस्कृत एवं ओजस्वी-तेजस्वी बनाने के लिए पूज्य बापूजी का दृढ़ संकल्प यहाँ प्रत्यक्ष फलित होता दिखायी दे रहा था । 'वेलेन्टाईन डे' जैसे दिवस मनाने से भारतीय संस्कृति पर होनेवाले आघातों के बारे में विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों को सावधान करते हुए पूज्यश्री ने ऐसे ओज-तेज को क्षीण करनेवाले 'डे' के बजाय माता-पिता के प्रति स्नेह व आदरभाव व्यक्त करनेवाला 'मातृ-पितृ पूजन-दिवस' मनाने की प्रेरणा दी ।

२७ जनवरी को आंध्र प्रदेश के गृहमंत्री श्री के. जनारेड्डी ने भी पूज्यश्री के वचनामृत का पान किया। पूज्य बापूजी की वाणी घर-घर तक पहुँचाने के लिए यहाँ की प्रेस व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने मानो कमर कस ली थी । विभिन्न क्षेत्रिय चैनलों ने सत्संग को लाखों-लाखों लोगों तक पहुँचाने का सराहनीय सेवाकार्य किया ।

रायपुर (छ.ग.) में १ से ३ फरवरी तक सत्संग समारोह का आयोजन हुआ। श्रद्धालुओं को ज्ञानगंगा में स्नान कराते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''यदि जन्म-मरण के चक्कर से छूटना है तो सत्संग और गुरुमंत्र का आश्रय ही सहज व सर्वोत्तम मार्ग है ।''

इस सत्संग-ज्ञानयज्ञ का लाभ राज्यपाल ई.एस.एल. नरसिम्हन तथा मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह ने भी लिया। राज्य सरकार ने नीम, आँवला और पीपल के वृक्ष राज्य में अधिक- से-अधिक लगाने का वचन दिया और तुलसी के पौधे घर-घर लगें, ऐसा भी वचन दिया ।

५ व ६ फरवरी को राऊरकेला (उड़ीसा) में सत्संग संपन्न हुआ, जिसमें उड़ीसासहित झारखंड, बिहार व पश्चिम बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों से आये श्रद्धालुओं ने सत्संगामृत का लाभ लिया । बारिश व कड़ाके की ठंड के बावजूद भी विशाल जनसैलाब यहाँ उमड़ा ।

यहाँ के विशाल जनसमुदाय को ज्ञानामृत से तृप्त करते हुए पूज्यश्री ने संसार की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डाला : ''संसार जड़, नश्वर, क्लेशों से भरा है; परमात्मा चेतन, शाश्वत और ज्ञानानंद से भरा है । हम सत्, चित्, आनंद की अमर संतान हैं फिर भी असत्, जड़ और दुःखरूप से आकर्षित होकर अशांति, दुःख, भय, शोक और जन्म-मरण में घसीटे जा रहे हैं। संसार का स्वभाव जानने से वैराग्य हुए बिना नहीं रहेगा और सच्चिदानंद का स्वभाव जानने से उसके भजनरस में सराबोर हुए बिना नहीं रहा जायेगा ।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना ।
ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥

(रामचरित. सुं.कां. : ३३.२)

हम अज्ञानता से संसार के पीछे भटक रहे हैं। इस क्षणभंगुर संसार में बड़े-से-बड़े धनी को भी गरीबी और पीड़ा का दंश झेलते देखा गया है। अतः बाहरी आडम्बर, धन-प्रतिष्ठा की लोलुपता से बचकर ईश्वर की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।''

आध्यात्मिक खजाना खोलने की कुंजी बताते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''रोज आधा घंटा ओंकार का जप करने से कुसंग से रक्षा तो होती ही है, साथ ही अनेक शक्तियों के साथ-साथ स्मरणशक्ति भी खिलती है ।''

पूज्यश्री ने भ्रूणहत्या व धर्मांतरण जैसी संवेदनशील सामाजिक समस्याओं की तरफ जनता

व जनप्रतिनिधियों का ध्यान खींचा ।

एकाम्रक क्षेत्र के नाम से पुराणों में प्रसिद्ध व प्राचीन परंपराओं से सुसमृद्ध भुवनेश्वर (उड़ीसा) में ८ से १० फरवरी तक पूज्य बापूजी के मुखारविंद से निःसृत ज्ञानगंगा प्रवाहित हुई । पूज्यश्री के आगमन से तीनों दिन भक्तिमय माहौल छाया रहा। मूसलाधार बारिश होते हुए भी लोग सत्संग-स्थल से टस-से-मस नहीं हुए। उनकी यह तपस्या व सत्संगप्रीति देख बापूजी का हृदय उमड़ पड़ा।

यहाँ उपस्थित व्यवस्थापन महाविद्यालय के छात्रों को निष्काम कर्मयोग की ओर प्रेरित करते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''भगवान पर दृढ़ विश्वास रखकर और यश-अपयश की चिंता छोड़कर अपना कर्तव्य तत्परतापूर्वक करना निश्चित रूप से यशस्वी होने की कुंजी है ।''

पुरी के गजपति श्री दिव्यसिंह देव भी हजारों श्रद्धालुओं के साथ सत्संग-दर्शन से मंत्रमुग्ध हुए। उन्होंने माल्यार्पण कर पूज्यश्री से शुभाशीर्वाद प्राप्त किये। लोकनिर्माण व गृहनिर्माण मंत्री श्री अनंग उदय सिंहदेव, भूतपूर्व मुख्यमंत्री जानकीवल्लभ पटनायक आदि ने भी सत्संग का रसास्वादन किया ।

१३ व १४ फरवरी को भवानीपटना (उड़ीसा) वासियों को पूज्यश्री के सत्संग का लाभ मिला। १० वर्ष की दीर्घ प्रतीक्षा व अनुनय-विनय के बाद पूज्यश्री का सत्संग पाकर यहाँ के श्रद्धालुओं का मनमयूर हर्ष से नाच उठा।

यहाँ के आदिवासीबहुल कालाहाँडी क्षेत्र के लोगों को पूज्यश्री के सत्संग-वचनामृत के साथ भंडारे का भी लाभ मिला । पूज्य बापूजी ने इस क्षेत्र की गरीब जनता की ओर मदद का हाथ बढ़ाते हुए ५१ लाख रुपये देने की घोषणा की, साथ ही गरीब आदिवासियों में अन्न, वस्त्र, दवाइयाँ तथा नगद राशि भी वितरित की गयी ।

प्रदेश के श्रम व रोजगार मंत्री प्रदीप नायक, कालाहाँडी क्षेत्र के सांसद श्री विक्रम केसरी सिंहदेव तथा वरिष्ठ काँग्रेसी नेता भक्तचरणदास ने भी हजारों श्रोताओं के साथ सत्संग-लाभ लिया और माल्यार्पण कर शुभाशीर्वाद प्राप्त किये ।

१४ फरवरी की शाम व १५ फरवरी को केसरापल्ली (उड़ीसा) में सत्संग हुआ। जीवन में सत्संग की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''सत्संग से जीवन ऊर्ध्वगामी होने लगता है, कुसंस्कार दूर होकर सुसंस्कृत व स्वस्थ जीवन का निर्माण होता है और इसीसे सुखी-समृद्ध समाज का निर्माण होता है । सनातन संस्कृति के दर्शाये मार्ग के अनुसार चलने से ही विश्व की समस्याओं का उचित समाधान हो सकता है; अतः संत व संस्कृति के मार्गदर्शन में चलनेवाली राजनीति ही यथार्थ राजनीति है ।''

यहाँ पर गंजाम के आदिवासी बंधुओं के लिए पूज्यश्री ने आर्थिक सहायता दी ।

१६ व १७ फरवरी को कोलकाता (प. बंगाल) के गरिया स्थित आश्रम में आयोजित सत्संग समारोह में लोकलाड़ले संतश्री का दर्शन-सत्संग पाने के लिए विशाल जनसमुदाय उमड़ पड़ा । चिंता-तनावों से भरे महानगरीय जीवन में भी प्रसन्नता, उमंग, चेतना जगानेवाले पूज्यश्री के सत्संग ने जन-मन की तपन मिटा दी ।

पूज्य बापूजी के करकमलों से व्यासपीठ व सत्संग-भवन का उद्घाटन सम्पन्न हुआ। पूज्यश्री ने कहा : ''सत्संग में जाना व दूसरों को ले जाना यह महान कार्य है। इसमें जो लोग जुटे हैं उन पर ईश्वर की महती कृपा होती है।''

संतों एवं भगवान की कृपा व आशीर्वाद प्रतीक्षा नहीं समीक्षा की चीज है । लोकसंत दृष्टि, वचन व संकल्प मात्र से अहैतुकी कृपा बरसाते हैं । इस बात पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''संतों से आशीर्वाद माँगने की आवश्यकता नहीं होती, जैसे गंगा के सामने जाकर जल माँगने की जरूरत नहीं पड़ती । संत की दृष्टि आप पर पड़ गयी, उनके वचन आपके कानों में पड़ गये तो समझ लो उनका आशीर्वाद मिल गया।'' ☐

आरा, जि. भोजपुर (बिहार) तथा बस्सी, जि. जयपुर (राज.) में कम्बल-वितरण ।

पीलीभीत (उ.प्र.) के गरीब विद्यार्थियों में स्वेटर तथा भरतपुर (राज.) में कम्बल वितरण ।
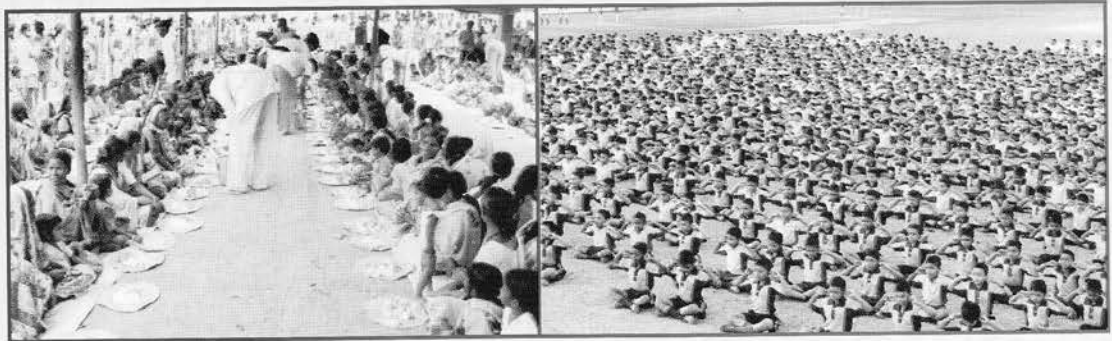
डोंबिवली, जि. ठाणे (महा.) के आदिवासी क्षेत्रों में भंडारा व अन्न-वितरण तथा
भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास करते नेवासा, जि. अहमदनगर (महा.) के विद्यार्थी।

आध्यात्मिक जिज्ञासा बढ़ाने हेतु लाठि, जि. गंजाम (उड़ीसा) के विद्यार्थियों में प्रतियोगिता का आयोजन
तथा चिरमिरी, जि. कोरिया (छ.ग.) के विद्यार्थियों ने निकाली व्यसनमुक्ति रैली ।

चेन्नै सत्संग कार्यक्रम में काँची कामकोटि पीठ के शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती स्नेहवश पूज्य बापूजी से मिलने आ पहुँचे।

1st March 2008
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006-08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07-08
'D' NO. MR/TECH/47-4/2008

Posting at Rishi Prasad PSO between 25th of preceding month to 10th of current month. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND. PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.

पूज्य बापूजी के अमृतवचनों का रसपान करने के बाद आशीर्वाद प्राप्त करते...

डॉ. रमन सिंह (मुख्यमंत्री,छ.ग.). श्री के. जना रेड्डी (गृह राज्यमंत्री, आं.प्र.). श्री ई.एस.एल. नरसिम्हन (राज्यपाल, छ.ग.).

कुसंस्कार का प्रतीक 'वेलेन्टाईन डे' के उन्मूलन हेतु बच्चों ने १४ फरवरी को मनाया 'मातृ-पितृ पूजन-दिवस'

राजपुरा जि. पटियाला (पंजाब) संत श्री आसारामजी गुरुकुल, धुलिया (महा.) बाल संस्कार केन्द्र, अमदावाद (गुज.)